आत्मदाह

से० रा० यात्री का नवीनतम उपन्यास

आत्मदाह

से० रा० यात्री



साहित्य सहकार
दिल्ली-110051

एक

अभी वह घर में घुसा भी नहीं था कि गली के मोड़ पर शकुन अपनी दो सहेलियों के साथ आती दिखाई पड़ गई। उन्होंने उसे नमस्ते की तो उसने शकुन से आखें बचाते हुए उसकी सहेली से पूछा, "आप लोग इस दोपहरी में इधर कहा भूल पड़ी?"

"भूला कौन है? इरादे से ही आई हैं।" यह कहने के साथ उस लड़की ने उसके मकान की तरफ इशारा करके कहा—"उस घर में जाना था—आपकी श्रद्धा हो तो आपके यहा भी चल सकती हैं।"

रात्रि-जागरण से उसका चेहरा और कपड़े दोनों ग्राम में अस्त-व्यस्त लग रहे थे। पर उसने अपनी ओर ध्यान न देकर जबरदस्ती जीवन्त होने की कोशिश की, "जहा जाने का निश्चय करके निकली हो—वहा अवश्य जाओ—शायद कोई मिल ही जाय।"

"मिल जाने में तो अब कोई मुश्किल नजर नहीं आ रही है। जब आप हमारे साथ हैं तो किसी और से मिलना जरूरी भी नहीं लगता।" लड़की ने शोखी से कहा।

"ओह! तो आप लोग मेरे साथ ही चल रही हैं। पर देख-सोच लीजिए—साथ कोई चलता नहीं है—महज थोड़े वक्त का वहम होता है।"

यह कहने के साथ ही उसने कनखियों से शकुन की ओर देखा। उसके इस कटाक्ष से शकुन सकपका गई और अकारण खासने लगी। उसने साथ वाली लड़कियों की ओर देखा पर कहा कुछ नहीं। जयन्त ने बात बदलकर लड़की से कहा—"घर में, इस वक्त शायद ज्योति ही होगी और तो सब लोग गर्मियों की छुट्टियों में बाहर बड़े भाई के पास चले गये हैं।"

लड़की ने उसके हाथ की अटैची की ओर संकेत करके पूछा, "और जनाब इस वक्त कहां से तशरीफ ला रहे हैं ?"

"एक भटकन से लौट रहा हूं—बस यही समझो—और क्या ?"

इस बार शकुन ने पूरी आंखें उठाकर उसका चेहरा देखा—शायद वह उसके भीतर उमड़ने-घुमड़ने वाले उद्वेलन को समझ गई थी। पर फिर भी वह चुप रही। उसकी सहेली रेणु ने चुटकी ली, "तो अब यही समझा जाय कि आपकी भटकन खत्म हो गई है ?"

"अरे तालाब में पत्थर गिरता है तो लहरों का सिलसिला चल ही निकलता है—एक के बाद दूसरी किनारे पर पछाड़ खाती रहती हैं लम्बे समय तक। बस यही भटकन का भी होता है—एक के बाद दूसरी और फिर तीसरी बस यों ही चलती चली जाती है।" अपनी बात कहकर उसे ख्याल आया कि वह उन लोगों से गली में ही उलझा खड़ा है। कायदे से लड़कियों को घर ले जाकर बिठाना चाहिए। घर में छोटी बहन ज्योति तो होगी ही। ज्योति और शकुन एक ही कक्षा में पढ़ती रही हैं और दोनों ने एक साथ ही बी० ए० पास किया है।

वह शकुन और बाकी लड़कियों के साथ घर में पहुंचा तो ज्योति उसे देखकर चौंक पड़ी, "अरे भइया जी ! आप इतनी जल्दी लौट आये !"

उसने शकुन की ओर संकेत करके कहा—"मैं गया ही कहां था—पहले तुम इन लोगों की खातिर करो कुछ।" और यह कहने के साथ ही वह शकुन और उसके साथ आई हुई लड़कियों को ज्योति के पास छोड़कर अपने कमरे में चला गया।

उसने कमरे में पहुंचकर अटैची एक कोने में फेंकी और कपड़े पहने-पहने ही पलंग पर पसर गया। रात-भर जागने की वजह से उसकी आंखें जल रही थीं और शिराएं शिथिल होकर चेतना-शून्य होने लगी थीं। अगर शकुन इस समय न आई होती तो वह बिस्तर पर पड़ने ही सो जाता, मगर अब वैसा होना असम्भव था।

बिस्तर पर पड़ा वह न जाने कितनी असम्बद्ध बातें सोचता चला गया कि तभी उसने अपने दरवाजे के बाहर किसी को खड़े देखा। वह बिस्तर छोड़कर उठा और दहलीज की ओर बढ़ गया। उसने देखा, दहलीज

के उस तरफ़ शकुन सिमटी-सिकुड़ी खड़ी थी।

उसने शकुन के उदास चेहरे पर नज़र डाली और धीमे स्वर में बोला, "वहां क्यों खड़ी हो—गैर हो गई लगती हो। ठीक भी तो है, दूरी बनाये रखने में ही सुरक्षा है।" और यह कहने के साथ उसके चेहरे पर एक कड़वी मुस्कान फैल गई।

शकुन दहलीज पार करके उसके कमरे में दाखिल हो गई और एक चौकी पर जाकर बैठ गई। उसने कमरे में इधर-उधर नज़र डाली और अवरुद्ध कंठ से कहने लगी, "कहने को अब कुछ खास बाकी नहीं है जयन्त। मगर···"

उसने शकुन को बीच में ही टोक दिया, "तो फिर तुम यहां तक चलकर क्यों आई हो?"

शकुन अपलक कुछ क्षण जयन्त का चेहरा देखती रही और फिर अपने स्थान से उठकर उसके करीब जाकर बोली, "आपके जीवन की बरबादी का कारण मैं ही हूं। आपको मुझसे मिला ही क्या सिवाय इसके कि मैंने आपको हमेशा दुख दिया।"

शकुन की बातें सुनकर जयन्त भावुक होने की बजाय निष्ठुरता से हंसकर बोला, "मेरे जीवन की बर्बादी का दोष अपने सिर ओढ़ना चाहो तो शौक से ओढ़ लो, मगर जब तक मेरी बर्बादी की बात भूलोगी नहीं तब तक खुश नहीं रह सकोगी। व्याध को भूल ही जाना चाहिए कि उसे किसका वध करना है।"

शकुन उसके शब्दों से आहत होने के बावजूद धीरज के साथ बोली, "जो भीतर होता है वह क्या कभी शब्दों में आ पाता है? आप कितना भी कटाक्ष कीजिए, बात फिर भी वहीं की वहीं है। मैंने आपको दुख दिए हैं—यह बात क्या मैं कभी भूल सकूंगी?"

"इन बातों में कुछ नहीं रखा है शकुन। पिछली बात भूल जाओ—दूसरी दुनिया बसाओ। जीवन सतत है—वह कहीं बंधकर नहीं रहता है। कहीं कुछ बर्बाद होता है तो दूसरी जगह कुछ आबाद होता है।"

अपनी कड़वाहट भूलकर जयन्त भावुक हो उठा और बोलता चला गया, "देखती हो, कितना लम्बा और फैला हुआ है जीवन। तुमने कैसे

समझ लिया कि उसका अन्त यहीं हो गया है? जिस जीवन का तुमने अभी तक कोई स्वाद ही नहीं चखा है उसके प्रति तुम्हारी यह विरक्ति मेरी समझ में नहीं आती है। हठ और पूर्वाग्रहों से आगत को नजरन्दाज कर जाना कोई समझदारी नही है। और चलो यह भी मान लो कि तुम मेरे जीवन का साकार सपना नहीं बनीं इसलिए मेरा जीवन अकारथ हो गया, तो भी यह सोचते चले जाने से क्या मिलने वाला है?"

"लेकिन..." कहकर शकुन ने जयन्त का चेहरा देखा और दबे स्वर में बोली, "क्या कुछ और नहीं हो सकता जयन्त?"

एकाएक जयन्त कुछ समझा नहीं, उसने सवालिया नजरों से शकुन की आंखों में कुछ पढ़ने की कोशिश करके पूछा, "कुछ और नहीं हो सकता क्या—यह तुम किस प्रसंग में पूछ रही हो? करने को अब है भी क्या?"

शकुन के चेहरे पर एक क्षण के लिए हिचक उभरी और अगले क्षण ही उसने जो शब्द कहे उन्हें शकुन के मुंह से सुनने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। शकुन ने कहा, "जयन्त, दुनिया बहुत बड़ी है—क्या इसमें हम लोग कहीं नहीं समा सकते?"

शकुन की बात से जयन्त पर जैसे पहाड़ ही टूट पड़ा, "कभी सोचा है तुमने कि तुम्हारे इन शब्दों का क्या अर्थ है?"

"हमेशा ही सोचती रही हूं, पर अपने मुंह से कहने के बजाय हमेशा आपके मुंह से सुनने की प्रतीक्षा में आज से पहले कभी कह न सकी।... और आज सारी प्रतीक्षाओं का अन्त करके कहने चली आई हूं।"

जयन्त ने एक लम्बी सांस ली और बिस्तर पर उठकर बैठ गया। उसने अपना सिर दोनों हथेलियों के बीच में दबा लिया। उसे लगा मानो वह निविड़ अन्धकारमयी घाटी में उतरता चला जा रहा है। दूसरे कम[illegible] में उसकी छोटी बहन ज्योति सिलाई मशीन पर कुछ सीने का काम [illegible] रही थी। मशीन की गड़गड़ाहट उसे अपने सिर में हथौड़े की मा[illegible] बजती सुनाई पड़ने लगी। वह सोचने लगा कि ऐसा क्यों हो रहा है [illegible]

देर बाद उसने आंखें खोलकर देखा तो कमरे का कोई भी दृ[illegible] स्पष्ट नजर नहीं आया। दिमाग में फैला हुआ अन्धकार जैसे कमरे[illegible] उठा। उसे शकुन भी दिखाई नहीं पड़ी। सारा कुछ इतना गड्डम[illegible]

गया लगा गोया सारी सृष्टि अन्धकार के गर्त में समा गई हो।

कई मिनट बाद आँखों में देखने की शक्ति लौटी तो उसने पलंग के पास शकुन को खड़े पाया और कुछ याद करने का प्रयास करते हुए बोला, "शकुन, तुमने कुछ कहा था?"

"हाँ, कुछ कहा था जयन्त—क्या उसे तुम सह नहीं पाये? मेरी बात सुनकर तुम बेहोशी में खो गए शायद! पर मैं यह बात फिर से कह सकूँगी—मुझे नहीं लगता।"

शकुन के इतना कहते ही जयन्त को सारा कुछ याद आ गया और वह बोला, "द्वार पर हमेशा कोई दस्तक नहीं देता। कोई आपके लिए भाग्योदय का सन्देश लेकर आता है, पर आप अनुपस्थित होते हैं तो फिर कुछ भी प्रेषित नहीं होता। बस यही समझो—अब बहुत देर हो चुकी है शकुन।"

"देर किसने की?" शकुन के कांपते शब्द उसकी चेतना में प्रश्न-दर-प्रश्न उतरते चले गए।

"इस पर बहस करने से अब क्या होने वाला है? जो वर्तमान सामने से खिसक गया—क्या उसे कभी वापस लाया जा सकता है?"

"क्या तुम कभी वर्तमान में रहते हो? शायद इसीलिए अभी कुछ नहीं खिसका जयन्त! तुम बार-बार भागते क्यों हो—और वह भी अकेले?" शकुन के मन में आवेग का शायद कोई जबरदस्त तूफान उठ खड़ा हुआ था। जो उसने वर्षों में कभी शब्दों में व्यक्त नहीं किया—वही कुछ आज आखिरी बयान की तरह कहे चली जा रही थी। और उसने अपने संबोधन में जयन्त को कभी भूलकर भी 'तुम' कहकर संबोधित नहीं किया था, पर आज संबोधनों की समस्त औपचारिकताएं बिखर कर रह गई थीं।

जयन्त ने विमूढ़ होकर शकुन का चेहरा देखा—उस चेहरे पर उद्वेग का भाव नहीं था और यह भी नहीं लग रहा था कि वह बिना सोचे-समझे अनजाने में ही इतनी बड़ी बात कहे चली जा रही है। जयन्त ने स्वयं को भीतर तक टटोला और हताश स्वर में बोला, "नहीं-नहीं शकुन, अब कुछ भी नहीं हो सकता—जो हो रहा है, उसी को स्वीकार कर लेने के अलावा कोई उपाय नहीं है।"

"जिसने मुझे कुछ कहना था और मैं सारे कुछ के विरुद्ध होकर यहाँ चली आई थी वह मुझे नहीं मिला। अन्तर्निहित संवाद को अपने साथ लिए मैं अब लौट रही हूँ—" यह कहकर मधुर ने अपनी हथेलियों को जोड़कर नमस्कार की मुद्रा व्यक्त की और लौटने के लिए मुड़ने लगी।

अनन्त को जैसे बिजली का जबरदस्त झटका लगा हो। वह पलंग से कूदकर उठा और मधुर की दोनों जुड़ी हथेलियों को अपनी पकड़ में लेकर बोला, "इतना ही कर्म कर दिया होता मधुर तुमने, तो मुझे तुम्हारे हाथों को पकड़ लेने का हौसला मिल गया होता। तुमने इतने वर्षों में स्पर्श की इच्छा भी नहीं जगने दी। जो मन में उमड़ता-घुमड़ता है, उसे भी आखिर कोई आकार चाहिए—पर वह आकार देने में तुम हमेशा इतनी कृपण क्यों बनी रहीं? मुझे तुमने एक बार भी अपने मन में यह मालूम होने का संकेत नहीं दिया कि मैं तुम्हारे योग्य हो सकता हूँ।"

"योग्यता का फैसला दूसरों के हाथ में है। देने से कौन-सा फ़ायदा है?"

"जिस पुरुष को आप मुझे बताने आई हो — उससे मेरा अपरिचित ही बना रहने में तो अच्छा है। नारी के स्पर्श से ही पुरुष जगता है— और मैंने किसी हाड़-मांस की मानवी को अपने जीवन में पुरुषार्थ की ओर बढ़ाते नहीं जाना। अब इतना ही जानता हूँ कि आत्मकेन्द्र हो या फिर बिलकुल एकान्तोन्मुख हो, वह भी कम आत्मनिर्भर नहीं बनता। टूटे-फूटे और कटे प्रसंगों से शायद कभी कुछ जुड़कर एकाकार हो सका तो तुम्हें बताऊँगा।" अपनी बात अनन्त ने बोलते-बोलते ही कही और मधुर की अपनी गिरफ्त से बँधी हुई हथेलियों को मुक्त कर दिया।

मधुर फिर एक क्षण के लिए सहमी-सहमी अनन्त का चेहरा देखती रही। वह इस अनन्त को बिलकुल नहीं पहचान पा रही थी। इतने समय से जिस अनन्त को जानती थी वह तो उसकी एक झलक पाने के लिए बेचैन बना रहता था। जब कॉलेज जाती थी तो चौराहे पर [illegible]या विद्यालय वाली सड़क पर बहुत दिन तक उसकी [illegible] नहीं होती थी कि मधुर अंग्रेजी या अपनी किसी महाराष्ट्रियन जाय।" "यह शुरू के दिनों की बातें थीं—फिर तो वह

...न्त का संयोग से उसके घर में भी आना-जाना होने लगा था।
...की यह देखते चले जाने की प्यास निरन्तर बढ़ती ही चली गई थी।
...सके सामने अनेक बार अकेली भी आकर बैठ जाती थी, तो बस
...लक देखता ही रहता था। मानो वह सारी बातें अपनी आंखों से ही
...हता था। जयन्त ने इतने लम्बे सान्निध्य में उसकी कलाई तो क्या
...गुली तक नहीं छुई थी। हां, कभी-कभी उसके चेहरे पर गहरी उदासी
...घिर आती थी तो पता नहीं कैसी निराशा-भरी एक लम्बी सांस लेता था।

शकुन ने जाने के लिए कदम बढ़ाने से पहले पूछा, "मैं जाती हूं, मेरे मन पर एक बड़ा बोझ था—उसे उतार सकने की तो कोई स्थिति ही नहीं है, पर फिर भी मैं पूछे बिना नहीं रह पा रही हूं, आप खुश तो रहेंगे न ?"

जयन्त ने एक सूखी हंसी हंसते हुए कहा, "क्यों नहीं—मैं हमेशा खुश रहूंगा। देख नहीं रही हो मैं कितना खुश हूं।"

"स्वयं के साथ छलना करने या आत्मविस्मृति में जीने को आप क्या खुशी मान रहे हैं ?"

"आदमी को जीने के लिए कोई नशा तो चाहिए ही शकुन।" जयन्त ने कांपते-से स्वर में अपनी बात कही।

"मानती हूं चाहिए—पर जरा गहरा और स्थायी भी हो तो वह नशा..."

"हां ! उन्माद वह नशा हो सकता है—शायद यही मेरी नियति है।" जयन्त के सिर में एक क्षण चक्कर-सा आया पर वह संभल गया।

"अपने से भागते चले जाने का उन्माद न।" शकुन ने जयन्त पर गहरी दृष्टि डाली।

"शकुन के रूप में मेरी ओर भी कोई खोज जारी रह सकती है—क्या तुम ऐसा नहीं मानतीं ?" जैसे वह बात को खत्म कर रहा हो।

शकुन ने जयन्त की आंखों में देखकर एक दयापूर्ण तिरस्कार की विवर्ण मुस्कान फेंकी, "आप किसी से प्यार नहीं कर सकते—क्योंकि एकाग्रता से स्वयं को प्यार नहीं करते—मात्र झुठलाते चले जाते हो। जो स्वयं को एकनिष्ठ होकर नहीं चाह सकता वह अपने बाहर भी किसी को आत्मद... नहीं दे सकता। आत्मदया और आत्मदान में फर्क है—आत्मदया...

कायरता है।"

"तुम्हें मेरे आत्मदान में चूक लगती है शकुन।" जयन्त ने व्यग्रता प्रकट करके शकुन द्वारा लगाये गए आरोप को सत्यापित कराना चाहा।

"इसे आप आत्मदान कहते हैं—स्वयं को बचाकर रख लेने में क्या रह है। टुकड़े-टुकड़े अपने को यहां-वहां फेंकते चले जाने में आत्म कभी स्थापित नहीं हो पाता शायद। खैर, आप तो बहुत सोचते हैं—आपका आत्मनिर्णय ही ठीक होगा। पर जो आपको कभी कहना था—उसे मैंने ही कह दिया—कर देने की भी जिद लेकर घर से निकल पड़ी थी—पर मुझे खण्ड-खण्ड जयन्त से यह उम्मीद छोड़ देनी चाहिए कि वह मुझे अपनी स्वप्नवीथी से निकालकर रक्त-मांस की यथार्थ भूमि पर स्थापित कर सकेगा।" अपनी बात झटके में समाप्त करके शकुन मुड़ गई। उलझे विचारों के बवडर में फंसा जयन्त कुछ नहीं कह पाया—कुछ नहीं कर पाया। शकुन तूफान की तरह कमरे से बाहर चली गई।

शकुन के चले जाने पर मानो जयन्त को होश आया—जैसे वह एक बहुत लम्बी तन्द्रा से बाहर निकल आया। उसे शकुन का एक-एक शब्द जिसमें जीने के लिए गहरी चुनौतियों-भरी भूमि थी उसके हाथ से आत्म-विस्मृति और विभ्रम में अनजाने ही खिसक गई। वह उस क्षण उस गहरी विडम्बना का अनुमान भी नहीं लगा सका जो मेघहीन आकाश से सहसा वज्र की तरह उसके ऊपर टूटने जैसी थी।

विजड़ित होकर वह कमरे में चक्कर काटने लगा। उसके भीतर से किसी ने उसे सम्बोधित किया, "जयन्त, अभी समय है, तुम आगे बढ़कर शकुन को रोक लो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम व्यर्थ ही कमज़ोर पड़ रहे हो। शकुन जब इतना बड़ा निर्णय ले सकती है तो तुम्हारे लिए अकरणीय क्या रह जाता है?" जयन्त का गला प्यास से चटक रहा था।

जयन्त गहरी ऊहापोह और किंकर्तव्यविमूढता में ऊभ-चूभ होने लगा। उसने दूसरे कमरे में चल रहे कार्य-व्यापार की आहट लेने की कोशिश की। कोई आवाज नहीं आ रही थी। ज्योति की सिलाई मशीन की गड़गड़ाहट भी बन्द हो चुकी थी। वह दरवाज़े के करीब जाकर ज्योति और शकुन के बीच होने वाले वार्तालाप को सुनने के लिए बढ़ गया—पर

उधर से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। उसके पैर और सारा शरीर खड़े-खड़े विचित्र ढंग से कांप रहा था।

जयन्त ने संकोच छोड़कर दूसरे कमरे में पग बढ़ा दिए। लेकिन ज्योति का कमरा खाली था। तो क्या शकुन और नीरा चली गईं। सारा मामला खत्म समझकर जयन्त के हाथ-पैर शिथिल पड़ गए। एक तो योंही पिछले दो दिनों से यहां-वहां मारा फिरता रहा था, फिर एकाएक शकुन का यों आना और अप्रत्याशित प्रस्ताव रखकर क्षण-भर में यों चले जाना वह सहसा बरदाश्त नहीं कर पाया। अपने कमरे में जाकर सन्निपात के रोगी की तरह वह बिस्तर पर गिर पड़ा।

कोई दसेक मिनट बाद ज्योति कमरे में आई तो वह ज्योति को देखकर भी नहीं पहचान पाया। ज्योति ने आवाज़ दी—"भैया, क्या सो रहे हो?"

उसे ज्योति के शब्द बहुत दूर से आते लगे—महज मक्खियों की भनभनाहट जैसे। मूर्च्छना के गहरे सागर में वह गहरे और गहरे डूबता चला गया। ज्योति ने पहले तो समझा वह सो गया है, लेकिन उसके हिलने-डुलने से उसे विश्वास हो गया कि जयन्त सोया नहीं है। वह उसके नज़दीक जाकर पूछने लगी, "जयन्त भैया, शकुन से आपने क्या कह दिया? वह इस तरह दुखी होकर क्यों लौट गई? नीरा बता रही थी कि उसकी शादी तय हो गई है! आपको पता नहीं था क्या इस बात का? मैंने आपके कमरे से उसे निकलते देखा तो वह बहुत खोई हुई थी। वह मेरे जिद करने पर भी नहीं ठहरी—बस आंधी की तरह चली गई।"

उसने आंखें खोलकर इधर-उधर देखा और पूछने लगा—"कौन आय था?"

ज्योति उसके प्रश्न से चौंक उठी। उसने घबराकर जयन्त का ह और माथा छूकर देखा—वह बुरी तरह जल रहा था। पता नहीं कि तेज बुखार था। वह त्रस्त होकर किंचित रुंधे स्वर में बोली—"जयन जयन्त, क्या हो गया तुम्हें—बोल क्यों नहीं रहे हो?"

जयन्त लम्बी-लम्बी गर्म सांसें ले रहा था और उसे अपनी कु नहीं थी। अब लग रहा था कि जब वह घर में लौटा था तब भी व

ग्रस्त था और उसने शकुन से, शराब के गहरे नशे मे डूबे किसी नशाखोर के अन्दाज मे बातें की थी। शकुन को पता होता कि वह स्थिर मति नही है —बाहर से रुग्ण लौटा है तो शायद वह उससे बातें ही न करती। शकुन को उसकी भीतरी और बाहरी विडम्बना का कोई भी ज्ञान नही हो पाया।

ज्योति घबराकर घर से बाहर निकल गई और पड़ोस के घर मे जाकर उसने फैमिली डाक्टर कपूर साहब को फोन किया। उसने बतलाया कि घर मे उसके और जयन्त के अलावा और कोई भी नही है। जयन्त बाहर गया हुआ था, लौटा तो अपने कमरे मे जाकर लेट गया—थोड़ी देर बाद उसे छूने पर पता चला कि वह भयंकर रूप से ज्वरग्रस्त है। शायद वह इस दशा मे तो बिलकुल ही नही है कि उसे क्लीनिक पर लेकर जाया जा सके।

डाक्टर कपूर ने ज्योति को आश्वासन दिया, "घबराने की कोई बात नही है—थकान की वजह से बुखार चढ़ गया होगा। मैं बहुत जल्दी पहुंच रहा हूं।"

ज्योति घर मे लौटकर जयन्त के बिस्तर के पास ही कुर्सी खींचकर बैठ गई। उसने जयन्त के माथे पर हाथ फेरना शुरू कर दिया। एकाएक जयन्त के शरीर में हलचल दिखाई पड़ी। वह उठकर बैठने की कोशिश करते हुए बड़बड़ाया—"उधर कौन घुसा है घर में?"

"कोई तो नही।" कहकर ज्योति उठकर दरवाज़े तक गई मगर दरवाज़ा पूर्ववत् बन्द था।

"अच्छा।" कहकर जयन्त फिर बिस्तर पर पड रहा और उनींदे स्वर में बोला, "कौन-सा स्टेशन है ? पानी मिलेगा ?"

ज्योति की आंखों से आंसू बहने लगे। वह अकेले में घबरा उठी। पता नही यह जयन्त को बैठे-बिठाये क्या हो गया। घर मे तो शकुन और उसकी सहेलियों साथ ठीकठाक घुसा था। उसे पता होता तो वह दोनो को अभी जाने ही नही देती।

वह कुर्सी से उठी और जयन्त के लिए पानी लेने चली गई। अभी वह पानी लेकर जयन्त के पास तक नहीं पहुंची थी कि दरवाज़े की घंटी

लगी। पानी का गिलास मेज पर टिकाकर वह दौड़ी और उसने द्वार
ल दिया। डाक्टर कपूर अपनी गाड़ी को दूर गली में छोड़ आये थे।
नका दवा वाला बक्सा हाथ में था और अपना हैट हिलाकर चेहरे पर
हवा देने की कोशिश कर रहे थे।

उन्होंने ज्योति को बदहवासी की दशा में देखा तो स्वभावानुसार
मुस्कराते हुए बोले, "ज्योति, तू बीमार है या जयन्त?"

"पता नहीं भैया को क्या हो गया है डाक्टर साहब! घंटे डेढ़ घंटे
पहले तो ठीक लौटे थे। परसों बाहर गये थे। लौटे तो अपने कमरे में
जाकर लेट गए। मेरी सहेलियां आई हुई थीं, मैं उनसे बातें करती रही।
उनके जाने के बाद मैंने कमरे में लौटकर देखा तो इन्हें इस हालत में
पाया।"

डाक्टर कपूर ने दरवाजे पर खड़े-खड़े ही ज्योति की बात धीरज से
सुनी और कहने लगे, "दरवाजे के बीच में दीवार बनकर कब तक खड़ी
रहेगी—मुझे देखने तो दे पहले कि जैन्त को हुआ क्या है।"

"अरे बाबा!" कहकर ज्योति ने अपनी जीभ काट ली और एकदम
घूमकर चल पड़ी। डाक्टर कपूर दालान और कमरे पार करते हुए जयन्त
के कमरे में पहुंचे।

उन्होंने जयन्त को पहले एक-दो बार आवाज दी और फिर अपने बैग
से थर्मामीटर निकालकर उसकी बगल में लगाया। उन्होंने बेहोशी की
हालत में थर्मामीटर मुंह में लगाना उचित नहीं समझा। बुखार की तपिश
को उन्होंने जयन्त की कलाई को अपने हाथ में पकड़कर महसूस कर
लिया।

थर्मामीटर हटाने के बाद जब कपूर साहब ने बुखार देखा तो दंग र
गये। बगल का बुखार एक सौ चार डिग्री से ऊपर निकल रहा थ
उनका चेहरा एक क्षण के लिए गम्भीर हो आया, मगर उन्होंने शब्दों
लापरवाही व्यक्त की, "जोती! पानी उबाल कर लाओ! कोई खास
नहीं है—मैं इंजेक्शन देता हूं—अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएगा

ज्योति पानी उबालकर वहीं कमरे में ले आई और स्टोव
लाई, डाक्टर ने सुई और सिरिंज बॉइल करके जयन्त की बांह में

लगाया और बैग से कुछ गोलियां और कैप्सूल देकर बोला, "चार बजे मैं फिर आऊंगा। जैन्त जब जागे तो इसे थोड़ी चाय देना और दो गोली और एक कैप्सूल दे देना।" फिर उन्होंने ज्योति का कन्धा थपथपाकर कहा, "बी ए ब्रेव गर्ल—घबराना नहीं। जैन्त बोत जल्दी से ठीक हो जाएगा।"

जयन्त ने डाक्टर कपूर की उपस्थिति में एक बार आंखें खोलकर इधर-उधर कुछ देखा और फिर आंखें बन्द कर लीं। कपूर साहब ने जयन्त को जगाने की कोशिश नहीं की। वह थोड़ी देर तक कुर्सी पर बैठे रहे और बाद में बैग उठाकर चलते हुए बोले, "आल राइट! मैं दो-ढाई घंटे में फिर आता हूं, डोन्ट फियर। सिर पर आइस बैग रखना—मैं अभी भिजवाता हूं।"

डाक्टर कपूर को दरवाजे तक छोड़कर ज्योति लौटकर जयन्त के कमरे में पहुंच गई।

फिर लगातार कई दिनों तक भाग-दौड़ चलती रही। इसी दौरान ज्योति ने बड़े भाई अनन्त को पठानकोट तार भेज दिया। तार भेजने के तीसरे दिन ही अनन्त, पत्नी और बच्चों के साथ आ गए। उन्होंने जयन्त की बुरी हालत देखकर डाक्टर कपूर से मशविरा किया। डाक्टर कपूर ने राय दी कि अस्पताल में भर्ती करा दिया जाय तो ज्यादा बेहतर है, क्योंकि मिक्स्ड टाइफाइड है और वायरस फीवर में कई तरह के मिश्रित बुखार हो जाते हैं। उन्होंने साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि वैसे घबराने की कोई बात नहीं है।

बड़े भाई अनन्त ने जयन्त को अस्पताल में दाखिल करा दिया। जब तक तेज बुखार रहा, जयन्त प्रायः बेहोश ही बना रहा। डाक्टर कपूर स्वयं बराबर अस्पताल में आकर जयन्त को देख जाते थे और अस्पताल के डाक्टर भी उसकी विशेष देखभाल कर रहे थे। धीरे-धीरे वह ठीक हो रहा था।

एक दोपहर में उसने देखा, शकुन और उसकी दादी उसके बैड के करीब खड़ी हैं। वह आंखें बन्द करके लेटा हुआ था कि स्टूल के खिसकने से अचानक उसकी आंखें खुल गईं। वह हड़बड़ाकर उठने शकुन

लगी। पानी का गिलास मेज पर टिकाकर वह दौड़ी और उसने द्वार खोल दिया। डाक्टर कपूर अपनी गाड़ी को दूर गली में छोड़ आये थे। उनका दवा वाला बक्सा हाथ में था और अपना हैट हिलाकर चेहरे पर हवा देने की कोशिश कर रहे थे।

उन्होंने ज्योति को बदहवासी की दशा में देखा तो स्वभावानुसार मुस्कराते हुए बोले, "ज्योति, तू बीमार है या जयन्त?"

"पता नहीं भैया को क्या हो गया है डाक्टर साहब! घंटे डेढ़ घंटे पहले तो ठीक लौटे थे। परसों बाहर गये थे। लौटे तो अपने कमरे में जाकर लेट गए। मेरी सहेलियां आई हुई थीं, मैं उनसे बातें करती रही। उनके जाने के बाद मैंने कमरे में लौटकर देखा तो इन्हें इस हालत में पाया।"

डाक्टर कपूर ने दरवाज़े पर खड़े-खड़े ही ज्योति की बात धीरज से सुनी और कहने लगे, "दरवाज़े के बीच में दीवार बनकर कब तक खड़ी रहेगी—मुझे देखने तो दे पहले कि जैन्त को हुआ क्या है।"

"अरे बाबा!" कहकर ज्योति ने अपनी जीभ काट ली और एकदम घूमकर चल पड़ी। डाक्टर कपूर दालान और कमरे पार करते हुए जयन्त के कमरे में पहुंचे।

उन्होंने जयन्त को पहले एक-दो बार आवाज दी और फिर अपने बैग से थर्मामीटर निकालकर उसकी बगल में लगाया। उन्होंने बेहोशी की हालत में थर्मामीटर मुंह में लगाना उचित नहीं समझा। बुखार की तपिश को उन्होंने जयन्त की कलाई को अपने हाथ में पकड़कर महसूस कर लिया।

थर्मामीटर हटाने के बाद जब कपूर साहब ने बुखार देखा तो दंग रह गये। बगल का बुखार एक सौ चार डिग्री से ऊपर निकल रहा था। उनका चेहरा एक क्षण के लिए गम्भीर हो आया, मगर उन्होंने शब्दों में लापरवाही व्यक्त की, "जोती! पानी उबाल कर लाओ! कोई खास बात नहीं है—मैं इंजेक्शन देता हूं—अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएगा।"

ज्योति पानी उबालकर वहीं कमरे में ले आई और स्टोव भी लाई, डाक्टर ने सुई और सिरिंज बॉइल करके जयन्त की बांह में इं

लगाया और बैग से कुछ गोलियां और कैप्सूल देकर बोला, "चार बजे मैं फिर आऊंगा। जैन्त जब जागे तो इसे थोड़ी चाय देना और दो गोली और एक कैप्सूल दे देना।" फिर उन्होने ज्योति का कन्धा थपथपाकर कहा, "बी ए ब्रेव गर्ल—घबराना नहीं। जैन्त बोत जल्दी से ठीक हो जाएगा।"

जयन्त ने डाक्टर कपूर की उपस्थिति मे एक बार आंखें खोलकर इधर-उधर कुछ देखा और फिर आंखें बन्द कर ली। कपूर साहब ने जयन्त को जगाने की कोशिश नही की। वह थोडी देर तक कुर्सी पर बैठे रहे और बाद में बैग उठाकर चलते हुए बोले, "आल राइट! मैं दो-ढाई घंटे मे फिर आता हूं, डोन्ट फियर। सिर पर आइस बैग रखना—मैं अभी भिजवाता हूं।"

डाक्टर कपूर को दरवाजे तक छोड़कर ज्योति लौटकर जयन्त के कमरे में पहुंच गई।

फिर लगातार कई दिनों तक भाग-दौड़ चलती रही। इसी दौरान ज्योति ने बड़े भाई अनन्त को पठानकोट तार भेज दिया। तार भेजने के तीसरे दिन ही अनन्त, पत्नी और बच्चो के साथ आ गए। उन्होंने जयन्त की बुरी हालत देखकर डाक्टर कपूर से मशविरा किया। डाक्टर कपूर ने राय दी कि अस्पताल मे भर्ती करा दिया जाय तो ज्यादा बेहतर है, क्योकि मिक्स्ड टाइफाइड है और वायरस फीवर मे कई तरह के मिश्रित बुखार हो जाते है। उन्होने साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि वैसे घबराने की कोई बात नही है।

बड़े भाई अनन्त ने जयन्त को अस्पताल मे दाखिल करा दिया। जब तक तेज बुखार रहा, जयन्त प्रायः बेहोश ही बना रहा। डाक्टर कपूर स्वयं बराबर अस्पताल मे आकर जयन्त को देख जाते थे और अस्पताल के डाक्टर भी उसकी विशेष देखभाल कर रहे थे। धीरे-धीरे वह ठीक हो रहा था।

एक दोपहर मे उसने देखा, शकुन और उसकी दादी उसके बैड के करीब खड़ी हैं। वह आंखें बन्द करके लेटा हुआ था कि स्टूल के खिसकने से अचानक उसकी आंखें खुल गईं। वह हड़बड़ाकर उठने लगा तो शकुन

ने लगी। पानी का गिलास मेज पर टिकाकर वह दौड़ी और उसने द्वार
ल दिया। डाक्टर कपूर अपनी गाड़ी को दूर गली में छोड़ आये थे।
उनका दवा वाला बक्सा हाथ में था और अपना हैट हिलाकर चेहरे पर
हवा देने की कोशिश कर रहे थे।

उन्होंने ज्योति को बदहवासी की दशा में देखा तो स्वभावानुसार
मुस्कराते हुए बोले, "ज्योति, तू बीमार है या जयन्त?"

"पता नहीं भैया को क्या हो गया है डाक्टर साहब! घंटे डेढ़ घंटे
पहले तो ठीक लौटे थे। परसों बाहर गये थे। लौटे तो अपने कमरे में
जाकर लेट गए। मेरी सहेलियां आई हुई थीं, मैं उनसे बातें करती रही।
उनके जाने के बाद मैंने कमरे में लौटकर देखा तो इन्हें इस हालत में
पाया।"

डाक्टर कपूर ने दरवाज़े पर खड़े-खड़े ही ज्योति की बात धीरज से
सुनी और कहने लगे, "दरवाज़े के बीच में दीवार बनकर कब तक खड़ी
रहेगी—मुझे देखने तो दे पहले कि जैन्त को हुआ क्या है।"

"अरे बाबा!" कहकर ज्योति ने अपनी जीभ काट ली और एकदम
घूमकर चल पड़ी। डाक्टर कपूर दालान और कमरे पार करते हुए जयन्त
के कमरे में पहुंचे।

उन्होंने जयन्त को पहले एक-दो बार आवाज दी और फिर अपने बैग
से थर्मामीटर निकालकर उसकी बगल में लगाया। उन्होंने बेहोशी की
हालत में थर्मामीटर मुंह में लगाना उचित नहीं समझा। बुखार की तपिश
को उन्होंने जयन्त की कलाई को अपने हाथ में पकड़कर महसूस कर
लिया।

थर्मामीटर हटाने के बाद जब कपूर साहब ने बुखार देखा तो दंग र
गये। बगल का बुखार एक सौ चार डिग्री से ऊपर निकल रहा थ
उनका चेहरा एक क्षण के लिए गम्भीर हो आया, मगर उन्होंने शब्दो
लापरवाही व्यक्त की, "जोती! पानी उबाल कर लाओ! कोई खास
नहीं है—मैं इंजेक्शन देता हूं—अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएगा

ज्योति पानी उबालकर वहीं कमरे में ले आई और स्टोव
लाई, डाक्टर ने सुई और सिरिंज बॉइल करके जयन्त की बांह में

लगाया और बैग से कुछ गोलियां और कैप्सूल देकर बोला, "चार बजे मैं फिर आऊंगा। जैन्त जब जागे तो इसे थोड़ी चाय देना और दो गोली और एक कैप्सूल दे देना।" फिर उन्होंने ज्योति का कन्धा थपथपाकर कहा, "बी ए ब्रेव गर्ल—घबराना नहीं। जैन्त बोत जल्दी से ठीक हो जाएगा।"

जयन्त ने डाक्टर कपूर की उपस्थिति में एक बार आंखें खोलकर इधर-उधर कुछ देखा और फिर आंखें बन्द कर ली। कपूर साहब ने जयन्त को जगाने की कोशिश नही की। वह थोडी देर तक कुर्सी पर बैठे रहे और बाद में बैग उठाकर चलते हुए बोले, "आल राइट! मैं दो-ढाई घंटे में फिर आता हूं, डोन्ट फियर। सिर पर आइस बैग रखना—मैं अभी भिजवाता हूं।"

डाक्टर कपूर को दरवाजे तक छोड़कर ज्योति लौटकर जयन्त के कमरे में पहुंच गई।

फिर लगातार कई दिनों तक भाग-दौड़ चलती रही। इसी दौरान ज्योति ने बडे भाई अनन्त को पठानकोट तार भेज दिया। तार भेजने के तीसरे दिन ही अनन्त, पत्नी और बच्चों के साथ आ गए। उन्होंने जयन्त की बुरी हालत देखकर डाक्टर कपूर से मशविरा किया। डाक्टर कपूर ने राय दी कि अस्पताल में भर्ती करा दिया जाय तो ज्यादा बेहतर है, क्योंकि मिक्स्ड टाइफाइड है और वायरस फीवर में कई तरह के मिश्रित बुखार हो जाते हैं। उन्होंने साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि वैसे घबराने की कोई बात नही है।

बड़े भाई अनन्त ने जयन्त को अस्पताल में दाखिल करा दिया। जब तक तेज बुखार रहा, जयन्त प्राय. बेहोश ही बना रहा। डाक्टर कपूर स्वयं बराबर अस्पताल में आकर जयन्त को देख जाते थे और अस्पताल के डाक्टर भी उसकी विशेष देखभाल कर रहे थे। धीरे-धीरे वह ठीक हो रहा था।

एक दोपहर में उसने देखा, शकुन और उसकी दादी उसके बैड के करीब खड़ी हैं। वह आंखें बन्द करके लेटा हुआ था कि स्टूल के खिसकने से अचानक उसकी आंखें खुल गईं। वह हड़बडाकर उठने लगा तो शकुन

की दादी ने उससे लेटे रहने को कहकर शकुन से विस्तर से खिसककर नीचे गिर गई चादर उठाने की बात कही। शकुन ने चादर उठाकर जयन्त के पैरों पर उढ़ा दी। दादी जी स्टूल पर बैठ कर उससे तबियत का हाल पूछने लगीं। शकुन उसके पलंग से सटकर खड़ी उसे देखती रही।

पता नहीं क्यों शकुन से बोलने में उसे हिचक अनुभव हुई। उसने भीतर से बहुत जोर लगाकर क्षीण स्वर में कहा, "क्यों, बैठोगी नहीं?"

शकुन ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया, बस अपलक उसका चेहरा देखती रही। वह शकुन से आंखें नहीं मिला पा रहा था। उसने शकुन के चेहरे से दृष्टि हटाकर दादी जी के बूढ़े झुर्रियों के सघन जाल से भरे-पूरे चेहरे पर देखा। उनकी आंखों में सहज ममत्व की चिन्ता थी। उन्होंने अपनी दुबली कलाई बढ़ाकर अपनी हथेली उसके माथे पर रखते हुए पूछा, "इतने जादा बीमार कैसे पड़ गये मुन्ना?"

उसके चेहरे पर एक थकी-हारी मुस्कान उभर आई और वह जोर लगाकर बोला, "पता नहीं कैसे यह सब कुछ हो गया। बाहर गया था, लौटते ही बीमार पड़ गया।"

शकुन की आंखें बराबर उसके चेहरे पर लगी हुई थीं। दस-बारह दिन से उसने दाढ़ी भी नहीं बनाई थी—सिर के बाल भी उलझ गए थे। अजीब-सा स्वरूप हो चला था—एकाएक कोई देखता तो शायद पहली नजर में पहचान भी न पाता। वह मन ही मन में शकुन से बातें कर रहा था, पर शब्दों में कोई बात कोई सम्बोधन उसके होठों पर उभर कर नहीं आ पा रहा था।

जयन्त ने शकुन के चेहरे पर उदासी और उद्विग्नता उभरते देखी तो उधर से अपनी आंखें हटा लीं। उसे लगा कि यदि वह शकुन की आंखों में कुछ पढ़ने की कोशिश करता रहेगा तो शायद वह स्वयं को संभाल नहीं पाएगी। शकुन की दादी जी साथ न आई होतीं तो निश्चय ही शकुन उसकी दशा देखकर बिखर उठती।

इसी समय हाथ में प्लास्टिक की कंडिया लटकाये हुए ज्योति आ गई। उसके साथ भाई का बेटा बबलू भी था। ज्योति ने नजदीक पहुंचकर दादी जी को नमस्ते की और शकुन की ओर मुस्कराकर देखा। दस-ग्यारह

साल का बबलू एक-दो मिनट वहां खड़ा रहा और फिर वार्ड का चक्कर लगाने के लिए बढ़ गया।

शकुन से ज्योति ने पूछा, "कितनी देर हो गई आप लोगों को आए हुए?"

दादी जी ने कहा, "जादा टैम नही हुआ—पर जैन्ती को यह तकलीफ इतनी कैसे बढ़ गई?" फिर उन्होंने उलाहना दिया, "इत्ते पास होकर भी बेटी तुमने खबर नही भेजी! कल नरेश (शकुन के चाचा) डाक्टर साब (कपूर साहब) के यहां न गया होता तो हमें पता भी न चलता। हम लोग तो इसी फिकर में थे कि जैन्ती आ क्यों नहीं रहा है। शकुन की शादी का फैलाव फैला पड़ा है—ग्यारह-बारह दिन रह गए हैं और काम रोज बढ़ता ही जा रहा है।"

ज्योति ने बतलाया, "घर में तो मेरे अलावा कोई था ही नही—वो तो बड़े भैया और भाभी तार देने पर आए हैं जम्मू से। कपूर साब ने ही जैन्त को यहां अस्पताल में भिजवाया था—अकेले में मेरे तो हाथ-पैर ही फूल गए थे। जैन्त भैया इतना बीमार तो पहले कभी पड़े ही नही थे। पता नही इस बारी कैसे इतने लम्बे बीमार हो गए।"

"हारी-बीमारी का क्या है बेटी—गोश्त-पोश्त से बनी आदमी की देही बीमारियों का घर कही गई है—मरी बीमारी कहके तो आती नही है। चलो ये जल्दी से अच्छा हो जाय तो शकुन की शादी में तो खड़ा हो जाय—हमें तो इसका बड़ा सहारा है।" दादी जी ने अपनी बात कहकर शकुन की तरफ देखा और पूछा—"क्या बजा हैगा—नरेश भी तो आने को कह रहा था।"

शकुन ने घड़ी देखकर समय बताया। दादी जी ने ज्योति से पूछा, "जन्ती को खाना देने को क्या कहा डाकदर ने?"

ज्योति ने कंडिया से डबल रोटी, बिस्कुट और मोसमियां निकालकर जयन्त के सिरहाने रखी टीन की छोटी-सी अलमारी में रखते हुए बताया, "अब तो भैया ठीक हो जायेंगे। इन्हें अब खाने की कोई मनाही थोड़े ही है। इस बखत तो मौसमी का जूस निकालकर दूंगी। सांझ को चाय, बिस्कुट, डबल रोटी जो भी इच्छा होगी ले लेंगे।" ज्योति ने स्टूल पर

मौसमी का रस निकालने के लिए चाकू और प्लास्टिक का छोटा-सा ज्यूसर रखा और कंडिया में से नमकदानी निकाली।

जब ज्योति रस निकालने की तैयारी कर चुकी तो शकुन ने उसे हटाकर स्वयं मौसमियों का रस निकालना शुरू कर दिया। जयन्त इस तरफ से उपराम होकर सोचने लगा कि उस दिन ज्योति ने बतलाया था कि उसके घर से शकुन बहुत दुखी और उदास होकर गई थी। उसे वह हर बात तफसील में याद आने लगी जो उसके और शकुन के बीच में हुई थी। सहसा उसके मुंह से एक लम्बी आह निकल गई।

उस लम्बी सांस अथवा आह में जरूर कुछ ऐसा था कि सहसा शकुन की आंखें जयन्त के चेहरे की ओर चली गईं। शायद जयन्त के मन में चलने वाले द्वन्द्व से वह बेखबर नहीं थी। लेकिन शकुन ने अपनी आंखें उधर से बलपूर्वक हटाकर रस निकालने का काम जारी रखा।

जब मौसमी के रस का गिलास उसने जयन्त की ओर बढ़ाया तो उसके हाथों में अजीब किस्म की कंपन थी। जयन्त ने गिलास पकड़ा और बोला, "आप लोग भी कुछ चाय-वाय पीतीं—मैं अकेला सेहते-जाम पीता रहूं—यह कुछ अच्छा नहीं लगेगा।"

सहसा शकुन मुस्करा उठी और ज्योति की तरफ देखकर बोली, "आपके भैया को हमारे सामने मौसमी का रस पीते शर्म आ रही है—आओ, हम लोग इतनी देर कहीं बाहर घूम आएं।"

दादी जी ने शकुन की बात सुनकर उसे डांटा, "लल्ली, तू बड़ी बेअकल है—एक तो बिचारा बीमार है—ऊपर से उसका मज़ाक उड़ा रही है। ठीक है, दोनों जनी घूम आओ, दो मिलट में लौट अइयो।"

ज्योति और शकुन दादी जी की प्यार-भरी दुत्कार पाकर मुस्करा उठीं और साथ-साथ बाहर निकल गईं।

कोई गहरा मन्तव्य नही था और न ज्योति को यह पता था कि उस दिन शकुन क्या फैसला करके आई थी। अगर जयन्त ने शकुन की दृढता के सामने अस्वीकार प्रकट न किया होता तो आज जयन्त और शकुन दोनों ही न जाने कहां जा चुके होते। पर शकुन का चेहरा सहसा गम्भीर हो गया और उसने उदास आंखों से ज्योति की ओर देखा। उसके होठों से एक दीर्घ सांस निकल पड़ी। उसने ज्योति से महज इतना ही कहा, "हां, तुम्हारे भैया मेरी वजह से ही बीमार पड़े हैं—मैंने उस रोज जो कुछ कहा था वह उसकी उम्मीद नही रखते थे।"

अभी ज्योति आगे कुछ पूछती कि तभी हाथों मे तरह-तरह के फूलों के गुच्छे लिए ज्योति का भतीजा बबलू पता नही कहां से आ निकला। उसने बुआ की ओर फूल बढ़ाकर पूछा—"बुआ जी, फूलों की माला बनाकर दोगी न?"

ज्योति ने उसके हाथो से फूल लेकर कहा, "घर चलकर बना दूगी, पर माला किसको पहनाएगा?"

यह बात तो वह बेचारा जानता नही था—सो दिग्भ्रमित होकर कुछ सोचते हुए बोला—"ममी को।"

शकुन के चेहरे पर जो अवसाद घिर आया था—बरबस वह भी मुस्करा उठी और बोली, "धत्त पगले! माला भी पहनाएगा तो अपनी माता जी को पहनाएगा।"

ज्योति ने चुटकी ली, "गरीब ममी को ही सबसे आसान उपलब्धि मानता है—तुझे माला पहनाने के लिए तो बहुत जोर चाहिए। है न?"

ज्योति की बात सुनकर शकुन के चेहरे का भाव फिर बदल गया। उसके भीतर एक अन्धड़-सा उठा, पर वह उसे जबरन दबाते हुए बोली—"यह मेरे या इसके चाहने से नही होता ज्योति। माला से वरमाला बनने के रास्ते मे हजारों मुश्किल और काले कोस पड़े हैं पगली।"

परेशान होकर ज्योति बोली, "पता नही शकुन तुझे ये क्या हो गया है। इन दिनों बहुत टची हो गई लगती है। मामूली-सी बात पर भी न जाने क्या-क्या संजीदा बातें बोलने लगती है। जो कुछ तेरे भीतर है उसे

साफ खोलकर क्यों नहीं बोलती ?"

शकुन ने ज्योति का चेहरा देखा—उसकी आंखों में परेशानी-भरी जिज्ञासा थी। शकुन दो-चार क्षण कुछ सोचती रही, फिर धीमे स्वर में कहने लगी, "ज्योति, न कोई बात अब छिपाने की है न साफ-साफ कहने की। जो कुछ होना था अब हो चुका। जिसकी किस्मत में जो लिखा होता है आखिर होता तो वही है।"

ज्योति उसकी बात का कुछ भी मतलब नहीं समझ पाई। वह उससे बहुत कुछ पूछना चाहती थी लेकिन तभी बबलू ने आकर कहा, "बुआ जी, आपको बड़ी वाली अम्मा बुला रही हैं ?"

बबलू की बात सुनकर दोनों को लगा कि उन्हें वार्ड से बाहर निकले हुए बहुत देर हो गई है। जब वे दोनों वार्ड में घुस रही थीं तो उन्होंने देखा जनरल वार्ड में मिलने आने वालों की आवाज ही काफी बढ़ गई थी।

शकुन और ज्योति जयन्त के बिस्तर के नज़दीक पहुंचीं तो शकुन की दादी बोलीं, "तुम दोनों कहां गुम हो गई थीं ?" फिर उन्होंने शकुन से कहा, "अब घर चलें—बड़ी अबेर हो गई। घर में ढेर सारा काम बिखरा पड़ा है।"

शकुन ने जयन्त का उतरा हुआ चेहरा एक क्षण देखा और फिर उधर से आंखें हटाकर दादी से बोली, "चलो अम्मा।"

जयन्त बिस्तर पर उठकर बैठ गया। उसके मन में विचारों का अंधड़ चल रहा था। उसे लग रहा था कि शकुन के मन में भी वही तूफान था, लेकिन वह शब्दों में एक-दूसरे से कुछ भी कह पाने में असमर्थ थे। जयन्त शकुन की झुकी-झुकी आंखों में कुछ पढ़ने को बेचैन था। तभी शकुन का चेहरा ऊपर उठा और उसने दोनों हाथ जोड़कर जयन्त को नमस्ते की। फिर उसने दादी से कहा, "चलो अम्मा।"

दादी जी स्टूल से जोर लगाकर उठीं। इतनी देर तक बैठे-बैठे उनके पांव अकड़ गए थे। वह धीरे से जयन्त के पलंग की दिशा में बढ़ीं और उसके सिर पर हाथ फेरकर बोलीं, "बेटा, जल्दी से ठीक होकर घर आ जा। शकुन के ब्याह से पहले तन्दुरुस्त हो जा—नरेश को तेरा ही सहारा है। इसका बाप तो हाथ लगाने से रहा—रात-दिन मीटिंगों में भागा फिरता

है। जब देखो दूसरे के कामों में ही सिर खपाता रहता है।"

जयन्त ने उन्हें आश्वासन दिया, "मैं अब एकदम ठीक हूं—एक-दो दिन में घर पहुंच जाऊंगा तो उधर आऊंगा। अब आप आने की तकलीफ न करें। इन दिनों घर में ही काफी काम फैला पड़ा होगा।" अन्तिम बात कहकर उसने शकुन की ओर देखा। पर शकुन ने अपनी आंखें ऊपर नहीं उठाईं, वह जल्दी दिखाते हुए बोली, "अम्मा, अब चलो—देर हो रही है।"

शकुन की दादी डगमगाती सी शकुन के साथ चल दी। जयन्त बराबर उसी दिशा में देखता रहा। ज्योति और बबलू भी उनके साथ ही जा रहे थे। जयन्त को उम्मीद थी कि शकुन शायद पीछे मुड़कर एक बार उसे देखेगी, पर वह धीरे-धीरे सारा वार्ड पार कर गई लेकिन उसने एक बार भी मुड़कर जयन्त को नहीं देखा।

जब वे लोग नज़रों से हट गए तो जयन्त एक साथ कटे पेड़ की तरह बिस्तर पर पड़ गया। उसकी और शकुन की कोई बातचीत नहीं हुई थी। लगता था उन दोनों के बीच से संवाद और सम्बोधन पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गए थे—पर फिर भी भीतर फूटते ज्वालामुखियों का तप्त लावा उन्हें जलाये डाल रहा था। अनबोलेपन में जो भाषा विकसित होती है उससे शब्दों में व्यक्त होने वाली भाषा कहीं पीछे रह जाती है। जो किया जा सकता था उसे न कर पाने का दुख जयन्त को साल रहा था। काश! वह शकुन की बात मान लेता और दुनिया-समाज के मामूली अदब-कायदों का उल्लंघन कर जाता तो आज शकुन की आंखों में अवसाद को काट फेंकने वाला उल्लास होता। थोड़े दिन चख-चख मचती और बाद में सारा कुछ सामान्य हो जाता। क्या वाकई इतनी बड़ी और बिखरी हुई दुनियां में वह शकुन को लेकर कहीं नहीं रह सकता था?

सोचते-सोचते जयन्त का सिर बुरी तरह से दर्द करने लगा। वह पहले ही बीमारी से काफी कमजोर हो गया था, इस अन्तर्द्वन्द्व ने उसे और भी निर्बल कर दिया।

जब वह विचारों के भंवरजाल में डूब-उतरा रहा था तो उसके बड़े भाई और ज्योति तथा बबलू आ गए। भाई ने उससे पूछा कि अब उसकी तबियत कैसी है?

उसके 'ठीक है' कहने पर वह बोले, "मैंने डाक्टर निगम से अभी बातें की हैं, वह कह रहे थे कि हम समझते हैं, अब आप जयन्त को घर ले जाएं। बीमारी तो अब कोई है नहीं—वीकनेस है—धीरे-धीरे दूर होगी।

उसने भाई की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह स्टूल खींचकर उसके पास बैठ गए। थोड़ी देर बाद जयन्त बोला, "अब आप लोग घर जाइए—बबलू और ज्योति को भी साथ ही लेते जाइए—वह कई घंटे से आई हुई है।"

उसके बड़े भाई ने पूछा, "रात को मेरे यहां ठहरने की जरूरत हो तो मैं नौ-दस बजे तक लौट आऊंगा।"

"नहीं-नहीं, अब किसी के रुकने की जरूरत नहीं है। आप लोग बेकार परेशान न हों। कल सुबह आ जाइएगा—वे लोग मुझे डिस्चार्ज कर देंगे तो कल मैं घर चला चलूंगा।"

"ठीक है," कहकर भाई साहब उठे और ज्योति से बोले, "चलो चलते हैं हम लोग। रामधन (नौकर) जैन्त का खाना ले आएगा—बेकार देर करने से इसे खाना मिलने में देरी होगी।"

जयन्त ने भाई साहब से खाना भेजने को मना कर दिया, लेकिन उन्होंने जाते-जाते कहा, "नहीं-नहीं। खाना नहीं खाओगे तो इनडाइजेशन (कब्जी) होगा। मैं लिक्विड डाइट भेजे देता हूं—रात को थोड़ा-बहुत खा जरूर लेना।"

इसके बाद बड़े भाई, ज्योति और बबलू को साथ लेकर चले गए। उन लोगों के जाने के बाद जयन्त आंखें बन्द करके बिस्तर पर पड़ रहा।

दो

अस्पताल से घर लौट आने के बाद से जयन्त की दुर्बलता कम नहीं हुई। एक-दो कदम चलने से ही सांस फूल उठती थी। उधर शकुन के विवाह का एक-एक दिन कम होता जा रहा था। इस दौरान शकुन के चाचा नरेश बाबू कई बार उसे देखने आ चुके थे। वह बारात की तैयारी में जुटे

थे कि कहां ठहराने की व्यवस्था करनी है, कहां शामियाना लगवाना है, इसके अलावा भी और छोटे-मोटे सैकड़ों काम फंसे पड़े थे। शकुन के पिता हरीश बाबू तो जैसे इस तरफ से बेखबर थे। समाजसेवी कई संस्थाओं का भार उनके सिर पर था। किसी के मंत्री थे तो किसी के अध्यक्ष। बराबर उनके सिलसिले में इधर-उधर दौड़ते रहते थे। हां, यह बात जरूर थी कि शादी के मौके पर आ जुटने वाले परिचितों की कोई कमी रहने वाली नहीं थी।

जयन्त को देखने के लिए नरेश बाबू जब भी आते यह जरूर कहते, "तुम शादी में नहीं आओगे तो शकुन बड़ी दुखी होगी। तुम्हारे बारे में बराबर पूछती ही रहती है—बड़े बेमौके बीमार पड़े यार!"

जयन्त हाथ मलकर रह जाता—उनसे कुछ कह भी तो नहीं सकता था। होते-होते शादी का दिन भी आ गया। शाम हुई, फिर रात हुई, मगर वह कुछ तय नहीं कर पाया। अन्त में उसने ज्योति और भाभी को शादी में भेज दिया।

जब भाभी और ज्योति शकुन के विवाह में चली गईं तो वह घर में अकेला रह गया। यह एक विचित्र विडम्बना थी कि भाग्य ने उसे इतना अवसर भी नहीं दिया कि वह शकुन को आखिरी बार देखने भी जा सकता।

जयन्त सारी रात बिस्तर पर पड़ा-पड़ा छटपटाता रहा। जब बिस्तर पर लेटे रहना असम्भव लगने लगता तो सहन में घूमने लगता था, लेकिन पैरों में शक्ति न होने के कारण अन्ततः फिर चारपाई पर लेट जाता। उसे रह-रहकर शकुन की वह बातें याद आने लगती जो वह एक पखवारे पहले इसी घर में बैठकर कह गई थी। शकुन की उपस्थिति में वह स्वयं को जितना सुदृढ़ और आत्मनिर्भर घोषित करता रहा था—उसका रचमात्र भी वह इस रात नहीं रह गया था। वह उस नशे की अपने भीतर तलाश कर रहा था जिसकी उसने शकुन के सामने घोषणा की थी, 'आदमी को जीने के लिए कोई नशा चाहिए।' पर अब वहां कुछ भी नहीं था। एक खोखलापन सब तरफ दिखाई पड़ता था। धारा सूखकर जैसे तल में सूखा रेत छोड़ जाती है—शकुन से अलग हो जाने में उसे [illegible] दीख पड़ रही थी।

ज्योति और भाभी सुवह पाँच वजे के करीव लौटीं। उस समय झुट-पुटा फटने लगा था और चिड़ियों की चहचहाट सुनाई पड़ने लगी थी। उसने घंटी वजते ही दरवाजा खोल दिया। उसे देखकर ज्योति वोली, "जैन्त भैया, क्या आप रात में सोये नहीं? सव लोग आपको वार-वार याद कर रहे थे। हमने शकुन को वतला दिया था कि आप हिलने लायक नहीं हैं, मगर फिर भी न जाने क्यों वह अन्त तक आपके पहुंचने की उम्मीद करती रही।"

शकुन के शव्द उसके सिर में हथौड़े की मानिन्द वज उठे। उसने स्वयं पर कठिनाई से कावू करने की कोशिश करते हुए पूछा, "क्या वारात विदा हो गई?"

"नहीं! वे लोग रिजर्व डिव्वे से आए हैं—गाड़ी शाम को पांच वजे जाती है—वारात उसी से वापस जाएगी।"

इसके वाद पूछने के लिए कुछ रहता ही नहीं था। अगर वारात लौट गई होती तो जयन्त की मनोदशा दूसरी हो जाती, मगर यह सुनने के वाद कि वारात अभी नहीं लौट रही है—शाम को लौटेगी—वह मानो सूली पर लटक गया। सूली पर प्राण आसानी से वाहर नहीं निकल पाते।

दोपहर तक वह विस्तर पर पड़ा मछली की तरह तड़पता रहा, लेकिन ज्योंही घड़ी में तीन वजे वह विस्तर छोड़कर उठ गया। उसके अंग-प्रत्यंग में गजव की स्फूर्ति भर उठी। उसे लगा कोई अदृश्य पुकार उसे चैन से नहीं वैठने दे रही है। यह वही आवाज़ थी जिसने उसे पन्द्रह दिन पहले घर छोड़कर चला जाने के वाद भी कहीं सुकून से नहीं रहने दिया था और अन्ततः वह घर वापस लौटकर ही रहा था। अगर वह न लौटा होता तो शकुन से उसका लम्वा वार्तालाप सम्भव कहां हो पाता? शकुन उसी दिन तो उसके घर आई थी जिस दिन वह स्वयं से भाग खड़ा होने के वावजूद लौटकर घर आ रहा था।

अफरातफरी में जयन्त ने शेव वनाई—मुंह-हाथ धोये और कपड़े वदलकर चलने लगा। जव वह जाने को तैयार था तो ज्योति उधर आ निकली और उसे यों कहीं जाने की जल्दी में देखकर आश्चर्य से पूछ वैठी, "भैया! यह भरी दोपहरी में आप कहां चले? देख नहीं रहे हैं वाहर

कितनी लू चल रही है ? अगर ऐसी गरमी में बाहर निकलोगे तो रास्ते में कहीं बेहोश होकर गिर जाओगे ?"

जयन्त ने न ज्योति की ओर आंखें उठाईं और न अपने जाने का उद्देश्य बतलाया—बस यह कहकर चल दिया, "तुम दरवाजा बन्द कर लो—मैं थोड़ी देर में आता हूं।"

यद्यपि ज्योति उसे जबरन रोकना चाहती थी लेकिन उसकी गंभीरता और बाहर जाने की दृढ़ता देखकर उसने कुछ नहीं कहा।

जब वह घर से बाहर निकल गया तो उसे दूर-दूर तक रिक्शा नजर नहीं आया। सारी सड़क वीरान पड़ी थी। लू के थपेड़े खाता वह सड़क पर आगे बढ़ने लगा। उसके हाथ-पैरों में एक विचित्र-सा कम्पन और सिर में उन्माद-सा भरने लगा। हालांकि शकुन का घर ज्यादा दूर नहीं था लेकिन उसकी दैहिक स्थिति में इतना थोड़ा फासला भी न जाने कितना फैला हुआ और दुर्गम लगने लगा।

वह बढ़ता रहा—उसे यह भी होश नहीं रहा कि इतनी टूटी-फूटी देह लेकर अगर वह विदा होती बारात की भीड़ में पहुंचेगा तो उसकी क्या दशा होगी ? अगर वह वहां पहुंचकर गिर पड़ा तो उसे संभालने की फुर्सत किसे होगी ? उसके पांव डगमगाते आगे बढ़ रहे थे और सिर कहीं दूर-दूर उड़ा जा रहा था। जेठ की गर्म दोपहरी ढलने लगी थी पर इस समय भी लू के थपेड़े पीटे डाल रहे थे। चलते-चलते वह कई जगह सांस लेने के लिए ठहरा। पन्द्रह दिन में पहली बार पांव इतना चल रहे थे लेकिन वह पूरे इंकार की स्थिति में थे।

जिस समय जयन्त टूटते वन्दनवारों और मंगल द्वार के सूखकर झरते पत्तों को रौंदते हुए गली में घुसा तो उसने सामने से रेंगकर बढ़ती आती मोटर देखी। शकुन लालचूनर में लिपटी गठरी जैसी बनी पिछली सीट पर बैठी थी। कार के पीछे एक लम्बी भीड़ विदा की घड़ी में मुंह लटकाए चल रही थी। मकान की सड़क से जुड़ी सीढ़ियों पर और बराण्डे में अनेक युवतियां और प्रौढ़ाएं अपने आंचल से आंखों को बार-बार पोंछ रही थीं।

शहनाई का सुरीलापन जयन्त के रोम-रोम को बेध गया।

जैसी एक सिहरन ने उसके सर्वांग को झकझोरकर रख दिया। बस गनीमत यही थी कि उस अतिशय भीड़ में उसे किसी खास ने चीन्हने की कोशिश नहीं की और वह गली की दीवार से लगकर खड़ा हो गया। परिजन-सम्बन्धी घोर व्यस्तता से इधर-उधर आ-जा रहे थे।

उस क्षण जयन्त के भीतर एक ऐसे प्राणी का जन्म हुआ जिससे वह कभी परिचित नहीं था, जो शायद पहले कभी नहीं जान पाया था कि शकुन उसके लिए क्या थी। यह सोचकर वह थर्रा उठा कि अब शकुन से मात्र चाहने भर से भेंट नहीं होगी। कभी उसके और शकुन के बीच की दूरी नदी के दो किनारों जैसी हो चली है जिनकी नियति में कभी मिलन नहीं बदा है।

भीड़ निकल जाने के बाद वह चुपचाप खिसकने की सोच रहा था—वैसे भी इतनी देर खड़े-खड़े उसके पांव डगमगाने लगे थे, फिर उसे यह भी डर था कि नरेश बाबू या शकुन के पिताजी की नजर में आ गया तो फिर उसकी मुक्ति संभव नहीं होगी; लेकिन तभी उसके कन्धे पर एक हाथ आया जिसे वह अनदेखा नहीं कर सका। यह हाथ उसके मित्र प्रभाकर का था।

जयन्त ने प्रभाकर का चेहरा देखा। प्रभाकर को शब्दों में कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। दोनों ही भीतर के सत्य से परिचित थे। प्रभाकर ने गाजेबाजे के आलम में फुसफुसा कर कहा, "तेरी आखिर तक याद की गई—मैं तो कल रात ही आया हूं लखनऊ से। नरेश बाबू ने आज सुबह ही तेरी बीमारी की बात बतलाई थी। बस यहां से निकलकर तेरे पास ही पहुंचता। यह तो बता कम्बख्त, तू इस वक्त यहां क्यों आ मरा?"

जयन्त ने कुछ नहीं कहा बस यही सोचा—'काश! मैं इस भीड़ में न आता!'

जयन्त और प्रभाकर एक ओर को हट गए। बाराती और दूसरे लोग आगे निकलते चले गए। देखते-देखते कार भी गली से बाहर निकल गई। करीब-करीब जब सभी लोग आगे बढ़ गए तो प्रभाकर और जयन्त धीरे-धीरे चल पड़े। प्रभाकर ने अब भी जयन्त के कन्धे पर हाथ रखा हुआ था।

सड़क पर पहुंचने के बाद प्रभाकर कहने लगा, "कहीं बैठकर चाय

पीते हैं। तू तो एकदम टूट गया इस बीमारी में। ऐसा भी क्या चक्कर हो गया जो हास्पीटल तक जाने की नौबत आ गई यार?"

जयन्त ने प्रभाकर से कहा, "चाय पीने का मन नहीं है। रिक्शा करो—मैं स्टेशन जाऊंगा।" उसने अपनी बीमारी के बारे में प्रभाकर को कुछ नहीं बतलाया।

प्रभाकर ने बहुत गौर से जयन्त का विवर्ण चेहरा देखा और वह समझ गया—जयन्त स्टेशन तक जाए बिना नहीं मानेगा। लाचार होकर उसे एक रिक्शा बुलाना पड़ा। जयन्त रिक्शे पर सवार हुआ तो प्रभाकर ने उसकी बगल में बैठकर रिक्शा-चालक से कहा, "फटाफट रेलवे स्टेशन चलो।"

रास्ते-भर प्रभाकर और जयन्त के बीच कोई बातचीत नहीं हुई। प्रभाकर ने बीच-बीच में उसका चेहरा देखा—शायद वह कुछ कहना चाहता था, पर जयन्त के चेहरे पर छाई हुई निस्तब्धता को देखकर वह चुप ही बना रहा।

स्टेशन के बाहर खुली जगह में विशाल बरगद के नीचे कार खड़ी हुई थी। उसमें आगे की सीट पर दो लड़कियां बैठी थीं। एक को तो वह पहचानता था—नीरा थी, वही तो शकुन के साथ उसके घर आई थी। दूसरी लड़की को वह नहीं जानता था—शायद कोई रिश्तेदार रही होगी।

पीछे की सीट पर शकुन और नरेश बाबू की पत्नी बैठी थी। शकुन की चाची जी के हाथ में पंखा था जिसे वह धीरे-धीरे झुला रही थी।

शकुन इस समय घूंघट में नहीं थी। चूनर के किनारे पर चांदी का गोटा लगा था जो उसके गौरवर्ण माथे पर अजब-सा प्रभामंडल बनाए हुए था। चेहरे का मेकअप शकुन को दुल्हन की सम्पूर्ण गरिमा से मंडित किए हुए था और नाक में सोने की कमानी की पतली नथ और उसमें पड़ा गुलाबी मोती शकुन की सुन्दरता को कई गुना बढ़ा गया था। शकुन का वह स्वरूप किसी को भी पागल बनाने को पर्याप्त था।

प्रभाकर जयन्त को वहीं छोड़कर आगे बढ़ गया। शकुन की चाची ने जयन्त को देखा तो वह बोल उठी, "अरे जयन्त, तुम वहां क्यों खड़े हो? बारात में तो आए नहीं—अब आखिरी वखत पहुंचे हो। कैसी तबि-

लकुल सूख गए बीमारी में—कैसा तो मुंह निकल आया—आठ-
न के रोग में।"

जयन्त चाची की खिड़की की तरफ बढ़ गया। शकुन ने एक क्षण
ा चेहरा देखा और अपना मुंह दूसरी ओर घुमा लिया। जयन्त समझ
कि उसे देखकर शकुन के धीरज का बांध टूट चला है।

शकुन की चाची ने शकुन के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दिलासा दी
र बोली, "पगली, रो क्यों रही है? बेचारा बीमार न होता तो क्या
री शादी में सबसे बढ़-चढ़कर हिस्सा न लेता?" फिर उन्होंने धीरे से
कहा, "जैन्ती! जा उधर जाके शकुन से बात कर ले—उसका मन टूट रहा
है। लड़की जब पराये घर जाती है तो अपनों की सूरत देखते ही वे
अख्तयार हो जाती है। सास-ननद सब अच्छे हैं—लड़का तो लाखों में
एक है—बड़ा इंजीनियर है, पर फिर भी अपने माता-पिता का घर छोड़ने
में लड़की का कलेजा दहल जाता है।"

शकुन के साथ चाची न आई होतीं तो जयन्त शायद शकुन के नजदीक
तक भी न पहुंच पाता। चाची जी के खुलेपन ने उसे शकुन का मुंह देख
लेने का अवसर दे दिया, लेकिन पता नहीं कौन-सी हिचक उसे शकुन से
संवाद स्थापित करने में बाधक बन रही थी। वह कई मिनट तक शकुन
की खिड़की के पास खड़ा रहा। शकुन का सिर झुका हुआ था और वह
सुबकते-सुबकते हिचकियां लेने लगी थी। न जाने कितने मूक गिले-शिकवे
उसकी थरथराती देह में हिलोरें ले रहे थे।

कई मिनट तक जयन्त चुपचाप कार के दरवाजे से लगा खड़ा रहा।
उसने शकुन से एक भी शब्द नहीं कहा। सम्भवतः उसके पास अपराध-
भाव के अतिरिक्त और कोई ऐसी स्पष्ट स्थिति नहीं थी जिसका वह
उल्लेख कर पाता। अन्ततः शकुन ने सिर ऊपर उठाकर खिड़की से ल
खड़े जयन्त पर दृष्टि डाली। जयन्त का चेहरा ही नहीं सारी देह जै
निचुड़-सी गई थी। उसके चेहरे पर महज बड़ी-बड़ी आंखें नजर अ
थीं। होठों पर सूखी पपड़ी जमी हुई थी और कुरते के सारे बटन खुले
थे। सिर पर बाल उलझकर रह गए थे। पहली ही नजर में लगता था
जैसे जयन्त को अपना कोई होश नहीं रह गया था। शकुन ने

क्लेश से कहा, "यह अपनी क्या हालत बना ली है? अपना ख़याल रखना और जल्दी से ठीक हो जाना।" यह कहने के साथ शकुन ने अपना चेहरा फिर नीचे झुका लिया।

जयन्त उसका झुका चेहरा अनिमेष देखता रहा। मांग में सिन्दूर की एक पतली रेखा साफ नजर आ रही थी। मुख की गोराई पीले चन्दन से रंगकर और भी ज्यादा खुल आई थी। जयन्त का मन हुआ उस सिर को अपने वक्ष में भरकर भीतर का समस्त गुबार निकाल दे। पर अगले क्षण ही उसने स्वयं को धिक्कारा, तुम्हारा कैसा भी अधिकार अब शकुन पर कहां रह गया है!

उसे कई लोग तेजी से कार की तरफ नजर आए, उनमें शकुन के चाचा नरेश बाबू भी थे। शायद प्लेटफार्म पर गाड़ी पहुंचने ही वाली थी। वह खिड़की से अलग-थलग हटकर खड़ा हो गया। नरेश ने उसे देखकर व्यस्तता से कहा, "जैन्त! ये क्या? तुम ऐसी बुरी हालत में क्यों चले आए भई?"

जयन्त ने इतना ही कहा, "अब मैं उतना बीमार नहीं हूं—सोचा, विदा के वक्त तो पहुंच ही जाऊं।"

"ठीक है, मगर यहां से अकेले गायब न हो जाना। गाड़ी आ रही है। शकुन को भेजकर घर मेरे साथ ही लौटना है तुम्हें—समझे।" यह कहकर उन्होंने कार का पिछला दरवाजा खोलकर शकुन को नीचे उतारा। शकुन के साथ ही नरेश की पत्नी भी बाहर आ गई।

वह लोग शकुन को साथ लेकर स्टेशन पर जाने लगे तो वह ठहरकर तय करने लगा कि अब उसे क्या करना चाहिए? क्या यहीं से लौट चलना ठीक होगा? वह अभी ऊहापोह में डूबा हुआ था कि स्टेशन की तरफ से प्रभाकर दौड़ता हुआ आया और उसे अकेले खड़े देखकर बोला, "तुम यहां अहमक की तरह खड़े क्या कर रहे हो? गाड़ी स्टेशन पर आ गई है और बस दो मिनट में जाने ही वाली है। क्या तुम शकुन को अलविदा भी नहीं कहोगे?"

जयन्त ने मुखर होकर प्रभाकर की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह धीमे डग रखता हुआ प्लेटफार्म की दिशा में चल पड़ा।

प्लेटफार्म पर काफी भीड़भाड़ थी और बारात वाले डिब्बे के सामने तो कोई पचास-साठ आदमी खड़े थे। बारात में जो लड़कियां और औरतें आई थीं उन्होंने शकुन को चारों ओर से घेर रखा था। बाहर प्लेटफार्म पर शकुन की कई सहेलियां शकुन की खिड़की से लगी खड़ी थीं। जयन्त और प्रभाकर भीड़ के बिलकुल पीछे खड़े थे।

जयन्त ने एक चोर नजर से शकुन को देखा। तत्काल शकुन से उसकी आंखों का विनिमय हो गया। शायद शकुन की बिलखाई-सी दृष्टि जयन्त को ही तलाश कर रही थी। शकुन की विभ्रान्त भावाकुल आंखें मानो उससे करीब आने की मनुहार करने लगीं पर वह निपट अपरिचित जैसा अपनी जगह पर दूर-दूर ही खड़ा रहा। बेगाने लोगों के बीच जाने वाले को, अपनों का एक सान्त्वना-भरा स्पर्श, एक बोल कितना बड़ा सम्बल देता है यह मानो वह समझकर भी अनदेखा कर गया।

डिब्बे में सामान की ठूंस-ठांस और सतर्कता से रखने-उठाने के आदेश गूंजने लगे। अजीब-सी अफरा-तफरी और भगदड़-सी मच गई। वह अपनी जगह और ज्यादा देर तक स्थिर खड़ा नहीं रह सका।

तभी गाड़ी ने सीटी दी और एक-दो मिनट के अन्तराल से गाड़ी खिसकनी शुरू हो गई। गाड़ी के चलते ही शकुन के डिब्बे के सामने खड़ी भीड़ इधर-उधर होने लगी। कुछ लोग धीमी चाल से चलती गाड़ी के साथ भी चलने लगे। जयन्त भी जरा देर प्लेटफार्म पर आगे बढ़ता रहा। उसके भीतर एक हूक-सी उठी—उसने सहसा आंखें उठाकर सामने देखा। शकुन अभी भी उसी तरफ देख रही थी जहां वह खड़ा था, पर भीड़ के पीछे छिपा होने की वजह से वह शकुन की दृष्टि से ओझल हो गया था।

गाड़ी ने जैसे ही गति पकड़ी, शकुन को विदा देने आए लोग ठहरने लगे। कुछ एकदम पीछे गेट की तरफ भी लौटने लगे। जयन्त सबकी आंखों से बचता हुआ आगे निकल गया। इस समय न वह नरेश बाबू से मिलना चाहता था न प्रभाकर के साथ जाना चाहता था। उन दोनों के साथ होने में निश्चय ही बोलने के लिए शब्दों की जरूरत पड़ती, मगर वह बाहर भीतर से इतना अवरुद्ध हो चला था कि उसे किसी से भी बातें करने में स्वयं से हटकर कुछ और होने का अभिनय करना पड़ता।

जब वह प्लेटफार्म के अन्त पर जा पहुंचा तो उसने देखा कि सभी लोग धीरे-धीरे बाहर चले गए हैं। शायद प्रभाकर उसकी तलाश में होगा पर उसके भीतर के खालीपन में इस समय कोई भी सम्मिलित होकर उसे कोई राहत नहीं दे सकता था। उसके मन में बैठा उसका अपना ही कोई दूसरा जयन्त उसे सान्त्वना दे सकता था। उसने प्लेटफार्म छोड़ दिया और जंगल की ओर बढ़ती रेल की पटरी के साथ-साथ आगे बढ़ने लगा।

सृष्टि पर पूरी तरह सांझ झुक आई थी। सूरज दूर पेड़ों के पीछे चला गया था और सन्ध्या दूर ओझल पर ठहर-सी गई थी। वह पटरियों के साथ-साथ बढ़ता चला गया। निर्विकार-निरुद्देश्य बढ़ते चले जाने का भाव ही उसके जेहन में शेष रह गया था—उसे इस बात की भी रंच मात्र परवाह नहीं थी कि उसका शरीर और पैर इस योग्य नहीं है कि वह चलते चले जाने की चाहे जितनी छूट ले ले।

बहुत आगे जाकर नदी पर पुल बना था—रेल की पटरियां पुल पार करके अन्धकार में खो गई थी। जयन्त पुल के इस तरफ एक खम्भे से टिककर खड़ा हो गया। सहसा उसे याद आया कि अभी कुछ देर पहले जो गाड़ी इस पुल से गुजरी थी शकुन उसी में थी। वह अनुमान लगाने की कोशिश करने लगा कि शकुन को लेकर गाड़ी अब तक कहां जा पहुंची होगी।

चारों तरफ अंधकार का साम्राज्य फैलने लगा तो वह पुल के ऊंचे ढलवान से नीचे कगार पर उतर गया। थोड़ा आगे जाकर श्मशानघाट था। वहां अब भी कोई शव जल रहा था। शव दाह करने वाले रात के गहरा जाने से पहले ही लौट गए थे। उस बीहड़ और सन्नाटे भरे निर्जन विस्तार में कोई भी मनुष्य नजर नहीं आता था। पुल के उधर बंधे बांध में घर्र-घर्र ध्वनि के साथ पानी गिर रहा था। जलता शव चिता में किस स्थिति को पहुंच चुका था इसका कोई स्पष्ट आभास नहीं मिल पा रहा था। पेड़ों पर चिड़ियों ने बसेरा ले रखा था और बीच-बीच में उनकी चीं-चीं सुनाई पड़ जाती थी। पेड़ों की छायायें चिता की हिलती-डुलती लपटों में कांप-कांप जाती थी।

जयन्त एक सीमेंट की पटिया पर चुपचाप बैठ गया। उसका सिर

उड़ा जा रहा था और सारी देह में पस्ती भर गई थी। उस डरावने वातावरण में गिद्धों के पर फड़फड़ाने से पीपल के पत्तों में खड़बड़ाहट होने लगती थी। जब उससे बैठा नहीं गया तो वह पांव फैलाकर समतल पटिया पर लम्बा होकर लेट गया। लेटे-लेटे ही उसकी आंखें बन्द हो गईं, पता नहीं वह कितनी देर सोया होगा कि पुल से एक मालगाड़ी के गुजरने का शोर उसके कानों में पड़ा और वह उठकर बैठ गया।

अब तक चिता की लपटें शान्त पड़ चुकी थीं और सब तरफ घुप्प अंधेरा छा गया था। नदी भी उस घटाटोप में कहीं खो गई थी। इधर-उधर जुगनूओं की चमक जरूर नजर आती थी, पर उससे अन्धकार कम होने के बजाय और भी ज्यादा बढ़ गया लगता था।

जयन्त ने पांवों पर जोर देकर खड़ा होने का प्रयास किया पर पैरों ने पूरी तरह जवाब दे दिया। फिर भी वह हिम्मत करके उठा और अनुमान से आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी देर तक चलने के बाद उसके पैरों ने उसका साथ देना आरम्भ कर दिया और वह गिरता-पड़ता मुख्य सड़क पर पहुंच गया। सड़क पर इस समय रिक्शा या तांगा मिलने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। हां, इक्का-दुक्का कारें और ट्रक वगैरह बीच-बीच में सड़क पर से गुजर जाते थे।

किसी सहारे की उम्मीद छोड़कर जयन्त धीरे-धीरे पैदल ही नगर की दिशा में लौट पड़ा। न जाने रास्ता कितना लम्बा हो गया था—काटे ही नहीं कट रहा था।

अन्ततः अनजाने में जयन्त चौराहे पर जाकर विमूढ़ की तरह खड़ा हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि इस समय कहां जाया जा सकता है। घर जाने का खयाल उसने दिमाग से निकाल दिया। वह बिना किसी इरादे के प्रभाकर के घर की तरफ मुड़ गया। प्रभाकर का कमरा मकान के मुख्य द्वार से सटी हुई सीढ़ियों के ऊपर ही पड़ता था। प्रभाकर रात को बहुत देर तक जागकर पढ़ता रहता था। अगर रात बहुत बीत चुकी होगी तब भी उसे जगाने में कोई मुश्किल नहीं होगी।

जब वह प्रभाकर के मकान पर पहुंचा तो प्रभाकर के कमरे में बत्ती

जल रही थी और लग रहा था कि उसका रेडियो भी ऑन था। जयन्त ने द्वार पर दो-तीन बार दस्तक दी तो प्रभाकर की आवाज सुनाई पड़ी, "कौन? आता हूं।"

दो-तीन मिनट बाद ही प्रभाकर के जीने की बत्ती जल उठी और सीढ़ियों पर उसकी पदचाप सुनाई पड़ने लगी। प्रभाकर ने सहन में आकर मुख्य द्वार की साकल खोलने के बजाय बीच की खिड़की खोलकर कहा, "कहां मर गया था यार? मैं तो पुलिस में रपट दर्ज कराने की सोच रहा था। बड़े भैया शाम से अब तक दो बार आ चुके हैं—नरेश बाबू के यहां भी हो आए हैं। बड़े परेशान हो रहे थे। कह रहे थे—पता नहीं जाने कहां बेहोश होकर पड़ा होगा?"

"तूने उन्हें क्या बताया?" कहते हुए जयन्त सिर झुकाकर खिड़की से होकर मकान में दाखिल हो गया।

"मैं उन्हें क्या बतलाता—तेरा कुछ पता था? मैंने गाड़ी जाने के बाद तुझे इधर-उधर बहुत तलाश किया। नरेश बाबू भी मुझसे बार-बार तेरे बारे में ही मालूम करते रहे। प्लेटफार्म खाली हो गया तो मैं गेट पर आकर खड़ा हो गया—कि शायद तू कहीं इधर-उधर भटक रहा होगा तो थोड़ी-बहुत देर में आ ही जाएगा, मगर खड़े-खड़े जब पैर दुखने लगे और स्टेशन का खल्लासी तक चला गया तो मैंने सोचा कि तू गाड़ी जाने से पहले ही रफूचक्कर हो गया। फिर यह भी बात मुझे मालूम थी कि तेरी तबियत कई दिनों से खराब थी इसलिए जी घबरा उठा होगा और तू घर चला गया होगा।"

जयन्त और प्रभाकर जीने की सीढ़ियां चढ़कर कमरे में पहुंच गए तो प्रभाकर ने फिर पूछा "हां! तूने बताया नहीं कि तू चला कहां गया था? बाद में सारे लोग तुझे यहां तक तलाश करने आ चुके हैं—क्या गाड़ी में सवार हो गया था? अब तू रात के साढ़े बारह बजे आ कहां से रहा है आखिर?"

जयन्त ने प्रभाकर की बात का कोई जवाब नहीं दिया और बोला, "एक गिलास पानी पिला पहले—प्यास के मारे गला चटक रहा है।"

"ठीक है मैं पानी अभी लाकर दे रहा हूं—मगर यह भी तो बक कि

तैनात किया हुआ है। मेरी नजर में आप निहायत ही उल्लू के पट्ठे हैं। मैं तो कहूंगा दब्बू, नामर्द और पूरी तरह से एस्केपिस्ट (पलायनवादी) हैं आप जनाब। हर खेल का कोई क्लाइमैक्स (चरम) होता है—लेकिन आपके इस कौतुक का क्या बना? शकुन के पास दस साल से ऐसी की तैसी कर रहे थे—आप वहां करने क्या जाते थे आखिर?"

प्रभाकर की उत्तेजना से स्पष्ट ही पता चल रहा था कि वह जयन्त के लिए मन ही मन में बड़ा दुखी था। यदि वह निर्विकार और तटस्थ रह पाता तो शायद जयन्त को इतनी गहराई से कुरेदने की कोशिश न करता।

जयन्त ने प्रभाकर का तमतमाया हुआ चेहरा लक्ष्य करके कहा, "छोड़ भी प्रभाकर, क्यों दुखी हो रहा है बेकार? बहुत-सी बातें दुनिया में ऐसी भी होती हैं जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता। कभी-कभी कोई शुरुआत ही ऐसी होती है कि हम उसे कभी पूर्णता तक नहीं पहुंचा पाते। तू शायद समझेगा नहीं—और शायद ज्यादा सही यह होगा कि मैं तुझे ठीक-ठीक समझा ही नहीं पाऊंगा। शकुन एक सुगन्ध, एक हवा के अनाम झोंके की तरह मेरी जिन्दगी में आई थी और उसी तरह चली गई। इस परिचय अथवा अन्तरगता को कोई भी नाम देना मुश्किल है। कुछ संबंध होते हैं कि जिन्हें आप स्पष्ट करके रेखांकित नहीं कर सकते, पर फिर भी वह सारे सम्बन्धों के कहीं बहुत ऊपर जाकर ठहर जाते हैं। उनका कोई इतिहास नहीं दुहराया जाता—उनका कहीं जिक्र नहीं होता पर फिर भी वह अपनी जगह जीवन-पर्यन्त अडिग, स्थिर और पूरी तीव्रता से बने रहते हैं।"

प्रभाकर कुछ क्षण चुप रहकर जयन्त की बात पर गौर करता रहा और फिर बोला, "बड़ी महीन और यूटोपिया (आदर्श) जैसी बात बोल रहा है तू। मैं तेरी बात चूंकि समझ नहीं पा रहा हूं इसलिए कोई चुनौती भी नहीं दे सकता, पर मैं एक बात जरूर जानना चाहता हूं—क्या तू शकुन से मुक्त हो गया है? क्या अब जिन्दगी में फिर इस तरह की कहानी तो रिपीट (दुहराया) नहीं करेगा? आर यू परफैक्टली नार्मल (क्या तू पूरी तरह सहज सामान्य है?)?"

"जो मैं नहीं जानता था और भी कोई नहीं जानता—उसे

मौजूद है—मैं हीटर पर अभी चाय का पानी रखता हूं।"

"छोड़ इस खटराग को—अब रात का आखिरी पहर शुरू हो रहा है—कहां चाय-वाय बनाता फिरेगा !"

लेकिन प्रभाकर ने जयन्त की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने स्टूल पर रखे बिजली के स्टोव पर दो प्याले पानी गर्म होने के लिए रख दिया और सहन की बत्ती जलाकर जीने की सीढ़ियां उतरने लगा। जयन्त के मना करने के बावजूद वह नीचे रसोईघर से कुछ खाने की सामग्री तलाश करने चला गया।

थोड़ी देर में बिस्कुट का पैकेट और आधी डबल रोटी लेकर प्रभाकर लौट आया और उत्साह प्रदर्शित करते हुए कहने लगा, "बेटा, मेरी पीठ ठोंक। मम्मी और पापा दोनों बड़े आंगन में सो रहे हैं मगर मैंने किसी को भनक भी नहीं लगने दी। ये बिस्कुट वगैरह मैं किचन से बिना बत्ती जलाये ही निकाल लाया हूं। बस दियासलाई की दो तीन सीकें फूंकने से दोनों चीजें मिल गईं। हां, मक्खन लाने की बात मेरे दिमाग में ही नहीं आई।" यह कहने के साथ ही वह चाय के उबलते पानी की ओर बढ़ गया।

प्रभाकर ने चाय बनाकर कांच के दो गिलासों में छान दी और जयन्त की ओर गिलास बढ़ाते हुए बोला, "ले तू पहले चाय पीकर कुछ ताकत हासिल कर। अब मैं तेरा सिर बाद में ही खाऊंगा बच्चू !"

प्रभाकर ने बिस्कुट का पैकेट खोलकर अखबार पर रख दिया और डबल रोटी के टुकड़े निकालकर बिस्कुटों के पास ही फैला दिये।

दोनों मित्र कुछ देर तक चुपचाप चाय पीते रहे। प्रभाकर ने एक बिस्कुट उठाकर जयन्त की ओर बढ़ाते हुए कहा, "चाय के साथ थोड़ा-बहुत खा जरूर ले—तू तो इतना मरियल हो गया है कि देखकर ही डर लगता है।" फिर वह मुस्कराकर कहने लगा, "सच पूछो तो तेरी हालत उस मुर्दे जैसी हो गई है जो साला सीधा मुर्दघाट से बगटूट दौड़ा चला आ रहा है।"

प्रभाकर की बात से जयन्त के चेहरे पर एक विचित्र परिवर्तन हुआ। उसने पूछा, "क्या वाकई मैं उधर से ही आता लग रहा हूं तुझे

"और क्या ? जरा आईने में अपना हुलिया तो देख—क्या हालत बना ली है अपनी ! अब मैं मानने लगा उस्ताद कि लैला-मजनूं की कहानी एकदम झूठी नहीं हो सकती । हर जमाने में यह कहानी दोहराई जाती है—बस वक्त और जगह भर बदल जाती है, बाकी स्प्रिट (भावना) तो वही एक जैसी रहती है दुनिया-भर में ।"

"अच्छा-अच्छा, अपनी अफलातूनी मत छांट ज्यादा । एक बार बक-बक शुरू कर देता है तो बस जैसे रुकने का नाम ही नहीं लेता । जरा चैन से चाय पीने दे अब ।" जयन्त ने प्रभाकर की ओर से ध्यान हटाकर चुपचाप चाय पीना आरम्भ कर दिया ।

"हां, यह हुई कुछ बात ।" कहकर प्रभाकर ने जयन्त की तरफ बिस्कुट बढ़ा दी—जिसे चुपचाप लेकर जयन्त ने चाय में भिगोकर खाना शुरू कर दिया ।

चाय खत्म करने के बाद जयन्त बोला, "बाहर सहन में कोई चारपाई पड़ी है क्या ? यहां तो काफी दमघोंटू माहौल है ।"

"क्यों, तू चारपाई का क्या करेगा ? यहीं बिस्तर पर लेट जा मेरे साथ । अब थोड़ी देर में तो पौ ही फटने वाली है । बाहर तो तू वैसे भी नहीं लेट पाएगा—बेपनाह मच्छर भिनभिना रहे हैं ।"

"कुछ नहीं होगा मच्छरों से—मैं अब थोड़ी देर बाहर खुले आकाश के नीचे ही लेटूंगा । तेरी भी रात यों ही गारत हो गई—अब थोड़ी देर तो सो ले ।" जयन्त बिस्तर से नीचे उतरकर खड़ा हो गया और बाहर जाने लगा ।

प्रभाकर ने एक बार फिर जोर लगाया, "मेरी कही मान, बेकार जिद करने से क्या फायदा ? वहां एक झिंगली-सी चारपाई पड़ी है । उसकी अदवाइन भी बीच में से टूट गई है—उस पर तुझसे लेटा नहीं जाएगा । यहां सीलिंग फैन भी है और मच्छरों का वैसा जोर नहीं है ।"

जयन्त को भय था कि यदि वह प्रभाकर के पास से तत्काल न उठ गया तो प्रभाकर उससे और भी प्रश्न कर सकता है जिनसे वह पूरी तरह कतराकर निकल जाना चाहता था । जयन्त ने प्रभाकर के पलंग से एक तकिया उठाया और बाहर जाते हुए बोला, "वह चारपाई किधर पड़ी है ?"

तीन

जयन्त उस झूले की मानिन्द झूलती चारपाई पर आड़ा लेटकर आसमान की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। आकाश में बादल का एक भी टुकड़ा तैरता नज़र नहीं आया। आकाशगंगा में असंख्य तारे इधर से उधर तक फैले पड़े थे। पूरा वातावरण शान्त और स्तब्ध था। कानों के पास मच्छरों की भिनभिनाहट को छोड़कर कहीं कोई स्वर नहीं था।

निःसंग और सम्पर्कहीन होकर जयन्त अपने आप में डूब गया। वह बराबर शकुन के सम्बन्ध में ही सोचता रहा। उसे बहुत पहले की याद आई जब शकुन आठवीं-नवीं कक्षा में पढ़ने वाली एक नादान बच्ची थी। वह स्वयं भी इन्टर में पढ़ता था। उसका नरेश बाबू से एक मीटिंग में परिचय हो गया था। वक्ता महोदय नरेश बाबू के घर खाना खाने जा रहे थे तो उनसे बातें करते हुए और अपनी तरह-तरह की जिज्ञासाएं उनके सामने रखते हुए वह उनके साथ ही चल पड़ा था। आधे रास्ते में पहुंचकर जब वह उन्हें धन्यवाद कहकर लौटने लगा था तो नरेश बाबू ने कहा था, "क्य [illegible] भी हमारे साथ चलिए न!" इसके बाद उन्होंने वक्ता

उसने देखा नरेश बाबू अपने बड़े भाई साहब का बड़ा अदब करते थे। उन्होंने उनकी उपस्थिति में सिगरेट भी नहीं जलाई। वहां एक लम्बे-चौड़े हाल में शहर के कई गण्यमान्य व्यक्ति बैठे थे और राजनीति को लेकर बातचीत चल रही थी। जो नेता वहां आए थे वह समाजवादी दल के वरिष्ठतम व्यक्तियों की श्रेणी में आते थे और तभी उनका दल ताजा-ताजा कांग्रेस से अलग हुआ था। हालांकि कांग्रेस की सरकार बने अभी पूरे दो वर्ष भी नहीं हुए थे लेकिन इस दल के नेता ने कांग्रेस की खामियों का इतना गहरा विवेचन किया था कि उस समय उनके विश्लेषण को जबरदस्त अतिशयोक्ति ही खयाल किया गया था। चूंकि नेता कम उम्र के बावजूद नेहरूजी के निकटतम सहकर्मियों में रह चुके थे इसलिए उनका नेहरू और प्रकारान्तर से कांग्रेस-विरोध चुप रहकर ही सुन लिया गया था। अभी पहले जनरल इलैक्शन में भी दो-तीन वर्ष की गुंजाइश बाकी थी इसलिए समाजवादी नेता सारे देश में व्यापक प्रचार करके चुनाव के लिए अपनी जड़ें मजबूती से जमाना चाहते थे।

चूंकि शुरू-शुरू में नरेश के बड़े भाई (शकुन के पिताजी) हरीश बाबू से उसका कोई परिचय नहीं था इसलिए वह नरेश बाबू के पास ही पहुंचता था। नरेश बाबू की रिहायश उसी घर में थोड़ा हटकर सहन के उस तरफ थी। उन्होंने अपने लिए दो अनगढ़ कमरे बनवा लिए थे जिनका फर्श भी कच्चा था और वह उसे महीने पन्द्रह दिन बाद गोबर से लिपवाते रहते थे। वहां दो लम्बे-चौड़े तख्त पड़े थे जिन पर आने-जाने वाले लोग खासी बेतकल्लुफी से जमे रहते थे। नरेश बाबू के वह दो कमरे सराय की मानिन्द थे। वहां कुली-कबाडी, मजदूर से लेकर पुलिस के अफसर और विभिन्न राजनीतिक दलों के लोग निरन्तर आते-जाते दिखाई पड़ते रहते थे।

नरेश और हरीश दोनों ही कहीं नौकरी नहीं करते थे, मगर घर का खर्च और इन लगातार आने-जाने वालों की मेहमानवाजी कैसे चल पाती थी इसका जयन्त को शुरू में कोई अनुमान नहीं था। वह तो कहीं बहुत वक्त के बाद उसे धीरे-धीरे मालूम हो पाया था।

हरीश और नरेश दोनों ही किसी भी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं

थे मगर उनके घर में आए दिन लगभग सभी राजनीतिक दलों के लोग आते रहते थे। जिस दिन वह उनके घर गया था तो कम्युनिस्ट पार्टी के एक मात्र सदस्य कामरेड चुन्नीलाल भी वहां मौजूद थे। इसी प्रकार कांग्रेस पार्टी के नगर अध्यक्ष मिश्रीलाल जी भी आराम से कुर्सी पर डटे बातें कर रहे थे।

धीरे-धीरे जयन्त को पता चल गया था कि हरीश बाबू का घर हमेशा से सरकार-विरोधियों का शरण-स्थल रहा है। जब देश में अंग्रेजों की दमनकारी शक्तियां कांग्रेसियों और क्रांतिकारियों को कुचलने का प्रयास करती थीं तो हरीश और नरेश दोनों ही उन्हें गुपचुप ढंग से पनाह देते थे। बाद में कांग्रेस सरकार की स्थापना हुई तो कम्युनिस्ट और समाजवादी दलों के लिए उनका घर एक अच्छा-खासा अड्डा बन गया। उन्होंने न अंग्रेज सरकार से कोई प्रोत्साहन या पुरस्कार पाया था और न स्वदेशी सरकार की कृपादृष्टि से लाभान्वित हुए थे। गांव में जो पुरखों की जमीन थी, उसी को बटाई पर देकर जो फसल तैयार होती थी उसी से गुज़र-बसर करते थे। पुराने दिनों की जमींदारी के बलबूते शहर में लम्बा-चौड़ा मकान बन गया था और थोड़ी-बहुत सम्पत्ति थी वह भी धीरे-धीरे छीजती चली जा रही थी। बाहर से रखरखाव बहुत माकूल था लेकिन भीतरी स्थितियां एकदम गड़बड़ थीं।

परिवार की आर्थिक स्थिति कितनी भी विषम सही मगर दस-पांच लोगों का दोनों समय का भोजन और चाय नाश्ता उस घर की परम्परा में शामिल हो गया था। राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं की बात तो फिर भी समझ में न आती थी, मगर आए दिन उस घर में पुलिस अधिकारियों का आवागमन एकदम समझ से बाहर था। वे लोग भी उसे अपना ही घर मानते थे और बेतकल्लुफी से घर को आरामगाह मानकर डटे रहते थे। बाद में जाकर पता चला कि हरीश बाबू के पिता किसी जमाने में डिप्टी कलक्टर थे और बाद में जाकर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया था। लेकिन उनकी डिप्टी कलक्टरी के दौरान कई महकमों के अफसरों की जो आवाजाही उस घर में बन गई थी वह कभी खत्म नहीं हुई बल्कि वह आगे जाकर एक परम्परा ही बन गई थी।

नगर में समाजवादी दल की स्थापना हो गई और आफिस बनाने के लिए बाकायदा जगह किराये पर ले ली गई। कालिज में भी युवा समाजवादी दल का गठन हो गया और कई उत्साही और प्रबुद्ध युवकों ने दल की सदस्यता ग्रहण कर ली। कालिज में 'स्टडी सर्किल' की स्थापना करने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव आए तो उनके भोजन की व्यवस्था भी हरीश बाबू के घर पर ही हुई। जयन्त और प्रभाकर को यह कार्य सौंपा गया कि जब आचार्य जी का भाषण समाप्त हो जाय तो वह दोनों आचार्य जी को हरीश बाबू के घर पर लेकर जाएं।

ऐन वक्त पर प्रभाकर को समाजवादी युवा शाखा में बांटे जाने वाले पर्चों को लेने पार्टी आफिस भेज दिया गया। उसे ही आचार्य जी को हरीश बाबू के यहां ले जाने का काम सौंपा गया।

वह जब आचार्य जी के साथ हरीश बाबू के घर पर पहुंचा तो वहां नगर के अनेक गण्यमान्य नागरिक उपस्थित थे। आचार्य जी का सबसे परिचय कराया गया। जब आचार्य जी कुर्सी पर जाकर बैठ गए तो हाथ में फूलों की माला लिए एक बारह-तेरह साल की लड़की आई। वह एक लंबा फ्राक पहने थी और उसके सुन्दर चेहरे पर गहरे संकोच का भाव उभर आया था। वह कुछ क्षण दरवाजे की आड़ में ठिठकी खड़ी रही तो कई लोगों ने उसे एक साथ आगे आने को कहा। आचार्य जी की दृष्टि उधर गई तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, "बेटी, बाबा के गले में हार पहनाने आई हो तो फिर शरमा क्यों रही हो ?" हरीश बाबू ने बतलाया कि यह उनकी बेटी शकुन है जो कन्या पाठशाला में नवीं कक्षा में पढ़ती है।

नरेश बाबू मकान के भीतर से आ रहे थे—शकुन को हाथ में माला लिए देखा तो उन्होंने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसका संकोच निवारण किया, "पगली ! तू यहां क्यों खड़ी है ? आचार्य जी के लिए तूने माला बनाई है तो आगे बढ़कर उन्हें पहनाती क्यों नहीं है ?"

शकुन झिझकते हुए आगे बढ़ी और इतने लोगों की भीड़ देखकर सकुचाते हुए उसने माला आचार्य जी के गले में पहना दी। लोग यह देखकर मुक्त भाव से हंसे कि आचार्य जी ने अपनी टोपी सिर से उतारकर हाथ में ले ली थी और माला डलवाने के लिए अपनी गर्दन आगे बढ़ा दी

थी। शायद उन्होंने ऐसा इसीलिए किया था कि उस छोटी-सी बच्ची को अधिक असुविधा का सामना न करना पड़े।

जयन्त का उस घर में कई दफा आना-जाना हो चुका था। लेकिन उसने पहले कभी शकुन को नहीं देखा था। शकुन का चेहरा-मोहरा हरीश बाबू की तरह सुन्दर था और आंखें बड़ी-बड़ी भावपूर्ण और सरलपन से आपूरित थीं। उन आंखों को देखकर सहज ही हिरनी की आंखों की स्मृति आ जाती थी। जयन्त सब कुछ भूलकर उस बालिका को तन्मयता से देखता रहा। आचार्य जी उससे बातें कर रहे थे और उसका सिर—जो घुंघराले बालों से अंटा पड़ा था—धीरे-धीरे अपनी हथेली से थपथपा रहे थे।

कई मिनट तक वह बच्ची संकोच में डूबी और सिर झुकाये-झुकाये आचार्य जी के प्रश्नों का उत्तर देती रही और जब उन्होंने उससे कुर्सी पर बैठने को कहा तो वह एकदम भाग पड़ी और क्षण-भर में कमरे से निकल कर न जाने कहां ओझल हो गई।

आचार्य जी ने हंसकर कहा, "दरअसल वह बिटिया हम लोगों की भीड़भाड़ से घबरा गई। उसकी समझ में यह बात नहीं आई कि हम इतने लोग निठल्लों की तरह यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं।"

आचार्य जी की बात पर लोग ठहाका लगाकर हंस पड़े।

हरीश बाबू से उसी दिन जयन्त का परिचय हुआ और उनके घर में उसका निर्बाध आवागमन शुरू हो गया। नरेश बाबू समाजवादी दल के नगर अध्यक्ष बन गए और उनके दो कमरे राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र बन गए। जयन्त और नरेश दोनों की उम्र में यों तो कई वर्षों का अन्तर था, पर निकटता बनी रहने से उम्र का भेद धीरे-धीरे मिटता चला गया।

घर में कभी-कभी नौकर की अनुपस्थिति में चाय और नाश्ता वगैरह लाकर देने का काम शकुन कर देती थी—बस यहीं से जयन्त और शकुन की बोलचाल शुरू हो गई। आगे जाकर तो यह स्थिति होने लगी कि यदि नरेश बाबू के पास जयन्त अकेला होता था तो शकुन किसी न किसी बहाने से वहां एक बार अवश्य आती थी। जयन्त उससे मजाक भी कर लेता था और वह प्रगल्भ होकर उत्तर भी दे देती थी।

जब शकुन दसवीं कक्षा में पहुंची तो जयन्त बी० ए० का विद्यार्थी

था। पार्टी की राजनीतिक सरगर्मियां बढ़ती जा रही थीं। जिले की सारी तहसीलों में दल की सदस्यता बढ़ाने का अभियान शुरू हो चुका था और सभी जगह बाकायदा दफ्तर बन गए थे। नरेश बाबू और कई अन्य लोगों के साथ जयन्त प्रचार-कार्य के लिए गांव देहात में चला जाता था और कभी-कभी सब लोग कहीं दूर दराज के गांवों में ठहर भी जाते थे।

जयन्त की उपस्थिति मे एक दिन शकुन ने अपने चाचा नरेश जी से कहा, "काका, मेरी अंग्रेजी कमजोर है, आप थोड़ी देर मुझे पढ़ा दिया कीजिए।"

शकुन के इस प्रस्ताव को सुनकर नरेश जी ने आंखें टेढ़ी करके शकुन को देखा और फिर ठहाका लगाकर बोले, "वाह-वाह! तूने भी अंग्रेजी पढ़ाने के लिए बड़ा काबिल मास्टर चुना है। अगर मुझे दसवीं का छोड़ सातवीं का इम्तिहान देना पड़ जाय तब भी पास मार्क्स नहीं ला सकता।"

इस पर जयन्त ने शकुन की वकालत की, "रहने दीजिए—रहने दीजिए। बी० ए० एल-एल० बी० वकील आदमी अगर यह सब कहने लगे तो हम जैसे को तो जमीन के भीतर भी ठौर नहीं मिलेगी। आप शकुन को कुछ बताना ही नहीं चाहते तो इस तरह के लगड़े बहाने क्यों बनाते हैं? हालांकि पार्टी की नीति यही है कि अंग्रेजी का कम से कम प्रयोग किया जाए लेकिन आप सारे ड्राफ्ट्स अब भी अंग्रेजी में ही तैयार करते हैं।"

इस पर नरेश बाबू ने लाचारी से हाथ हिलाकर कहा था, "यह सब पुरानी आदत की वजह से हो रहा है, पर भाई, मैं कोर्स की किताबों के मामले में एकदम कोरा हो चुका हूं। हां, तुम्हारी बात अलग है—कभी-कभी तुम ही शकुन को कुछ बतला दिया करो—बाद में कोई माकूल इन्तजाम कर दिया जाएगा।"

और इस पढ़ाने की बात को आधार बनाकर शकुन और जयन्त का प्राय: साथ बैठना होने लगा था और बाद में तो सामान्य रूप से घर में सबने स्वीकार कर लिया था कि जयन्त से अच्छा पढ़ा सकने वाला कोई दूसरा आदमी फिलहाल है ही नहीं। घर में शकुन की दादी का कड़ा अनु-शासन था क्योंकि हरीश बाबू की पत्नी का बरसों पहले देहान्त चुका

था और नरेश बाबू की पत्नी प्रायः अपने मायके में रहती थी। नरेश बाबू के तीन-चार बच्चे थे लेकिन उन्हें घर-परिवार के झमेलों में कोई रस नहीं था। उन्हें न पत्नी की चिन्ता थी और न बच्चों को लेकर कुछ सोचते थे। लगता था उनका विवाह थोड़ी उम्र में अनचाहे-अनजाने ही हो गया था। उनका कोई बच्चा उस घर में नहीं रहता था—वह सब अपने मामा के साथ रहते थे। कभी-कभी आठ-दस साल का एक सुन्दर सलोना लड़का गर्मियों की छुट्टियों में आ जाया करता था। बाद में शकुन से ही पता चला था कि वह नरेश बाबू का बड़ा बेटा है। उसे हरीश बाबू और दादी जी खूब लाड़-लड़ाते थे क्योंकि उसके अलावा घर में कोई दूसरा लड़का नहीं था। लेकिन नरेश बाबू उसकी तरफ आंखें उठाकर भी नहीं देखते थे। जयन्त को कभी-कभी भारी आश्चर्य होता था कि इतने सहज और मिलनसार नरेश बाबू अपने लड़के को लेकर इतने विरक्त और ठंडे थे।

जब जयन्त बाकायदा शकुन को पढ़ाने लगा तो उन दोनों को बैठने के लिए एक अलग से कमरा दे दिया गया। शकुन की दादी किसी रियासती खानदान से थीं और बाहर से बड़ी सख्त और कड़े अनुशासन वाली महिला दीख पड़ती थीं। वह कभी कमरे में आ भी जाती थीं तो जयन्त सकपका कर उठ खड़ा होता था और उसकी बोलती बन्द हो जाती थी। लेकिन शकुन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वह सहज और खुलेपन का व्यवहार करती थी।

धीरे-धीरे यह तक होने लगा कि शकुन की दादीजी ने जयन्त का खाना और नाश्ता वहीं करने का हुक्म जारी कर दिया। शकुन ने जयन्त के मन से उनका भय निकाल दिया और बतलाने लगी कि कुछ बरस पहले तक तो घर में कोई बाहर वाला आदमी ड्योढ़ी लांघकर घुस ही नहीं सकता था। जयन्त पहला व्यक्ति था जो उस घर के भीतर बेरोक पहुंच गया।

शकुन से यह सूचना पाने के बाद कि घर में अंतरंग प्रवेश पाने वाला वह पहला व्यक्ति है, जयन्त अपने प्रति भीतर से बहुत सख्त हो गया। उसने शकुन को इच्छा होने पर भी छूने तक का प्रयास नहीं किया। धीरे-धीरे वह यह अनुभव करने लगा कि शकुन को निरन्तर देखते रहने पर भी उसकी आंखों आर मन की तृप्ति नहीं होती है। यदि एक दिन भी किसी

कारणवश वह शकुन के पास न पहुंच पाता तो उसके मन में छटपटाहट होने लगती। शकुन के साथ बैठे-बैठे घंटों गुजर जाते लेकिन समय बीतने का उसे कोई अहसास न हो पाता। जाहिर है, इतनी लम्बी बैठक में स्कूली पढ़ाई का ज्यादा दखल नहीं हो सकता था। उन दोनों के बीच बराबर बातचीत का क्रम भी नहीं चल पाता था। बल्कि दो वर्ष बीत जाने पर तो औपचारिक या बाहरी बातें दोनों के मध्य चल ही नहीं पाती थी फिर भी दोनों एक-दूसरे के सामने बैठे परस्पर आंखों ही आंखों में बहुत कुछ कहते रहते थे। उन दोनों के मध्य किस प्रकार के सम्बन्ध विकसित हो रहे हैं यह उस घर में कोई नहीं जानता था। उन दोनों को घंटों साथ बैठे रहने की खुली छूट मिल गई थी। जब जयन्त नरेश बाबू के घर पहुंचता था तो कभी-कभी वह घंटों तक घर में नहीं होते थे। जयन्त उनसे मिलने की उम्मीद में शकुन के पास लम्बे समय तक बैठा रहता था। उस घर में यह सभी बड़ों ने स्वीकार कर लिया था कि जयन्त एक सभ्य और चरित्र-वान लड़का है जिससे किसी भी प्रकार का अहित सम्भव नहीं है। हरीश बाबू तो वैसे भी घर में बहुत कम रहते थे। कभी होते भी थे तो जयन्त से हंसकर पूछते थे, "कहिए मास्टर साहब, आपकी कूढ़ मगज शिष्या आपका कितना दिमाग खा चुकी है?"

जयन्त उन्हें हंसकर ही उत्तर देता था, "अब शकुन कालिज में पढ़ रही है—उसके बारे में आप अण्डर एस्टीमेट कर रहे हैं।"

"आपकी बदौलत चल निकली है वर्ना तो यह जितना कुछ पढ़ती है हमें सब मालूम है। अगर आप इसे पढ़ाना छोड़ दें तो शायद दस साल में भी पास न हो पाए।" हरीश बाबू शकुन को खिझाने की कोशिश करते।

लेकिन शकुन इन बातों से उत्तेजित होने के बजाय हंसकर कहती, "मास्टर साहब ही मुझे पढ़ाने की वजह से बी०ए० पास कर गए हैं। अगर यह मुझे पढ़ाना छोड़ दें तो खुद फेल हो जाएंगे।" यह कहने के बाद वह जयन्त का चेहरा गौर से देखकर पूछती, "क्यों मास्टर जी, मैं ठीक कहती हूं न?"

"बिलकुल, बिलकुल, इसमें क्या सन्देह है? यह तो तुम्हारी एक तरह से भारी कृपा है कि इसके एवज मुझसे ट्यूशन की फीस वसूल नहीं करती

हो।" जयन्त भी हंसकर उत्तर देता।

हरीश बाबू के घर में जिस निश्छल भाव से जयन्त को स्वीकार किया गया उसमें इस बात के लिए कभी कोई गुंजाइश बन ही नहीं पाई कि जयन्त अपनी उम्र की जायज मांग को शकुन के निकट व्यक्त कर पाता। जितनी ही शकुन उच्छल तरंगवती धारा के समान किसी स्नेह-सागर में स्वयं को डुबा देने के लिए सन्नद्ध होती चली गई, उतना ही जयन्त स्वयं को मर्यादाओं और वर्जनाओं की बेड़ियों में कसता चला गया। कोई नवयुवक यौवन की दहलीज़ पर खड़ी किसी नवयुवती के निकटतम संसर्ग में कब तक सहज शांत और उद्वेगहीन बना रह सकता है? जयन्त जितना ही स्वयं पर कठोर नियंत्रण रखना चाहता वह उतना ही ज्यादा उद्विग्न हो जाता। शकुन की प्यार-भरी आंखों का भाव पढ़ते ही वह निर्वाक और स्तब्ध हो जाता। उसके हाथ-पैरों में विचित्र-सी सनसनाहट भरने लगी और मस्तिष्क फटने-फटने को हो आता। जयन्त की कई बार तीव्र इच्छा होती कि वह शकुन की गोरी और मांसल कलाई अपने हाथ में लेकर स्नेहाकुल उंगलियों से दबा दे, पर ऐसा करने के बजाय वह आकुल होकर कमरे में इधर-उधर घूमने लगता।

जयन्त की इस चुप्पी, कातरता और उखड़ेपन को शकुन ज़रा भी नहीं समझ पाती थी। उसके वार्तालाप और व्यवहार में सहजता की कभी कमी नहीं होती थी, बल्कि उसे यों तनावग्रस्त देखकर वह मुस्कराकर पूछ बैठती थी, "मास्टर साहब! आपके सिर में क्या दर्द है—क्या बाम लगा दूं?" या वह उठकर जाती और चाय बना लाती। जयन्त उसका चेहरा एकटक देखता रहता और फिर मुट्ठियां बन्द करने और खोलने लगता।

जयन्त की इस विचित्र स्थिति से परेशान होकर आखिर एक दिन शकुन पूछ ही बैठी, "आपको, ये बैठे-बैठे क्या होने लगता है? आप मेरे पास आकर इतने 'अपसेट' क्यों होने लगते हैं? मैं तो आपसे कभी कुछ कहती भी नहीं हूं!"

"मुझसे तुम ही क्या कोई भी कुछ नहीं कहता; मगर···" और जयन्त ने अपनी बात बीच में ही तोड़ दी। शकुन ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और उसने ज्योंही कुर्सी से उठने का उपक्रम किया, शकुन ने उसके कुर्ते की

बांह पकड़कर कहा, "आपको मेरी कसम है। आज बतलाना ही पड़ेगा कि आपको मेरे पास बैठते ही थोड़ी देर में ये क्या होने लगता है। आप इतने चुप क्यों रहते हैं? क्या मैंने कोई गलती कर दी है कि आप मुझसे बोलते तक नहीं हैं—बस सामने बैठकर न जाने क्या ताकते रहते हैं?"

जयन्त ने एक दीर्घ सांस भरकर कहा, "जो तुम अपने आप से जानती नहीं हो शकुन—उसे मैं भी बतला नहीं सकता।"

"मैं क्या ज्योतिषी या भगवान हूं जो बिना बताये ही जान जाऊंगी?"

"मेरे लिए तो भगवान ही हो। क्या तुम नहीं जानतीं कि मैं इतना बेताब क्यों रहता हू?"

जयन्त की बात पर शकुन दिल खोलकर हंसने लगी और जब उसकी हंसी थमी तो वह बोली, "बेताबी की कोई बात तो होगी ही, पर उसे तो कोई डाक्टर ही बतला सकता है।"

जयन्त ने थककर कहा, "तुम क्या हो यह तुम्हें पता ही नहीं है? कुछ लोग इतने नादान होते हैं कि उन्हें कुछ भी समझाया नहीं जा सकता।"

"बोलकर नहीं तो लिखकर तो समझाया ही जा सकता है। वह नादान कौन है और कहां है—मुझे बतला दोगे तो शायद मैं ही कुछ कोशिश करूंगी।" शकुन ने बेलाग ढंग से अपनी बात कही।

जयन्त को लगा कि यही वह क्षण है जब उसे शकुन के सामने अपना हृदय खोल देना चाहिए। अपनी बात कहकर कुण्ठामुक्त हो जाना चाहिए। लेकिन वह स्पष्ट कहने के बजाय पहेलियां बुझाने लगा, "अच्छा शकुन! यह तो बताओ कि क्या तुम सपने देखती हो?"

शकुन क्षण-भर सोचकर बोली, "सपने तो सभी देखते हैं, यहां तक कि जानवर भी देखते हैं—आपने क्या सुना नहीं है कि लोग कहते हैं 'बिल्ली को चूहों के सपने'।"

"मेरा वह मतलब नहीं है।" कहकर जयन्त ने बात बदल दी।

"तब आपका मतलब क्या है? सपने तो आते ही होंगे पर मुझे तो कभी याद नहीं रहते।" एक क्षण ठहरकर उसने पूछा—"अच्छा आप बताइए_

कि आपको कैसे सपने आते हैं—क्या बाद में आपको उनकी याद रह जाती है ?"

जयन्त का प्रयास व्यर्थ हो गया। शकुन को वह संकेत में जिस दिशा में ले जाना चाहता था वहां ले जाने में असमर्थ हो गया था। उधर से हटकर शकुन और वह स्वयं से अलग हटकर तरह-तरह के सपनों पर बातें करने लगे और इस तरह वह बात जो प्रत्येक क्षण जयन्त के मन मस्तिष्क को कुरेदती रहती थी बहुत दूर जा पड़ी।

जयन्त की नसों में हर क्षण लावा फूटता रहता था। उसके मन में कहीं भाग जाने की अकुलाहट उसे चैन से बैठने नहीं देती थी। पता नहीं वह क्या कर डालना चाहता था। हरीश बाबू को तो वह कुछ कह ही नहीं सकता था। नरेश भी इस तरफ से पूरी तरह बेखबर थे। इसके अलावा शकुन उम्र के उस दौर में थी जब वह उसको विश्वास में लेकर कोई बड़ा निर्णय नहीं ले सकता था। इसके अतिरिक्त वह दोनों ही अभी विद्यार्थी थे। जयन्त के सामने भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा भी नहीं बन पाई थी। ज्योति और शकुन एक ही कक्षा में पढ़ती थीं और उन दोनों के बीच अच्छा परिचय भी बन गया था, लेकिन जयन्त को लेकर दोनों के मध्य कोई गम्भीर बात कभी नहीं होती थी।

जैसे ही शाम होने लगती थी जयन्त के पांव स्वतः ही शकुन के घर की दिशा में जाने के लिए अकुलाने लगते थे। उसकी दशा उस उन्मत्त मद्यप जैसी हो चली थी जो दिन में लाख प्रतिज्ञाएं करता हो कि वह मधुशाला का मुंह नहीं देखेगा, पर ज्योंही सन्ध्या का आगमन होता हो—वह अपनी सारी कसमें भूलकर विवश भाव से उधर ही चल पड़ता हो।

पहले आम चुनावों की सरगर्मी बढ़ने के साथ ही पार्टी का काम एकाएक बढ़ गया। कुछ सक्रिय सदस्यों के सम्मुख गांव-देहात में रहकर काम करने का प्रस्ताव रखा गया तो जयन्त ने सर्वप्रथम स्वयं को प्रस्तुत कर दिया। यही नहीं उसने नगर से इतनी दूर का क्षेत्र चुना जहां दिन-भर में एक बस भी कठिनाई से जाती थी। फिर वह गांव सड़क से भी कई मील दूर पड़ता था। जयन्त ने स्वयं को शकुन से दूर करने का यही एकमात्र

उचित समझा। उसने अपने साथ अन्य कार्यकर्ताओं को ले जाने में कोई रुचि नहीं दिखलाई और एक दिन शकुन को बिना बतलाए हुए इस देहाती क्षेत्र में चला गया।

बसन्त ने गांव की एक चौपाल में अपना डेरा डाला। वह सुबह से पर्चे और पोस्टर आदि लेकर निकल पड़ता था और लोगों के बीच दिन भर मारा फिरता था। उसकी राजनीति में कोई रुचि नहीं थी और वह उसके भटकने की व्यर्थता को भी भली प्रकार जानता था, किन्तु उसके सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं था। जिस प्रत्याशी का वह लोकसभा की सदस्यता के लिए प्रचार करता घूमता था उससे भी उसका कोई परिचय नहीं था।

गांव-देहात की जिन्दगी को उसने पहली बार खुली आंखों देखा था। वहां उसे कई पढ़े-लिखे नौजवानों का साथ मिल गया था। यह सम्पर्क संख्या भी बढ़ रहा था और जहां भी जाता था उसकी बात सुनने वालों की कमी नहीं थी। गरीबी और पिछड़ापन ही वहां देहाती जिन्दगी में अशिक्षा और भुखमरी मुख्य मुद्दे थे लेकिन आवभगत और सुशीलन का कोई अभाव नहीं था। लोग भीड़ के रूप में जुटकर उसकी बातें सुनते थे और उसके खाने-पीने की अपेक्षाकृत बेहतर व्यवस्था करते थे। बाद में लोकसभा का नामांकन प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति ने उसके लिए एक कार और माइक आदि भी भिजवा दिया था। कुछ और भी सदस्य दल के प्रचार के लिए आने लगे थे और चुनाव-प्रचार का कार्य उत्तेजनात्मक रूप ले चुका था। उस क्षेत्र में दूसरे दलों के लोग भी अपना प्रचार कर रहे थे और दिनोंदिन सरगर्मी बढ़ती जा रही थी।

किन्तु दिन-भर की भाग-दौड़ और व्यस्तता के बाद जब बसन्त बिस्तर पर लेटता था तो शकुन की आकृति उसकी आंखों में उभर आती थी। शकुन को वह हर रात सपने में देखता था और शकुन बार-बार उससे यही प्रश्न करती थी, 'आपने मुझसे दूर जाकर जो सजा मुझे दी है उसका कोई कारण तो बतलाया होता। आप बिना बतलाए ही चले गए, कहकर भी तो जा सकते थे—मैं आपको जबरदस्ती बांधकर थोड़े ही रख लेती।'

और एक दिन नरेन्द्र बाबू बहुत-से लोगों को ट्रक में भर कर और लोकसभा तथा विधानसभा के प्रत्याशियों को भी क्षेत्र में ले

उद्देश्य से निमंत्रित कर आए। वह रात को जब कई गांवों का दौरा करके लौटे तो उससे बोले, "भई, तुम तो गजब की जीवट के आदमी हो। गांव में एक बार आए तो बस घुटने गाड़कर बैठ ही गए। पार्टी के दफ्तर में तुम्हारे काम की जमकर तारीफ हो रही है। यहां लगता है हमारे फेवर में अच्छा माहौल बन गया है। भुवन बाबू (पार्टी के प्रचार मंत्री) की इच्छा है कि तुम कुछ दूसरे क्षेत्र भी देखो।" फिर उन्होंने एकाएक कहा, "शकुन तुम्हें बहुत याद करती है—उससे मिलकर भी नहीं आए ?"

नरेश के मुंह से शकुन का नाम निकलते ही जयन्त का दिल बाहर आने के लिए मचल पड़ा। उसने स्वयं पर बड़ी कठिनाई से नियंत्रण किया और कमजोर स्वर में बोला, "हां, यह तो गलत बात हो गई।" फिर उसने शकुन के सम्बन्ध में और भी कुछ सुनने की आशा में पूछा, "शकुन की पढ़ाई कैसी चल रही है? कुछ पढ़ती-बढ़ती है या किताबों से विरक्त हो गई है ?"

नरेश बाबू ने शकुन की पढ़ाई को लेकर कोई गम्भीरता प्रदर्शित नहीं की। वह बोले, "हम लोग कल वापस जा रहे हैं। यहां का लोकल एलीमैन्ट अब काफी जागरूक हो गया है और चुनाव में दिलचस्पी भी ले रहा है। इसके अलावा यहां लखनऊ से आए हुए कुछ लोगों को डेपुट किया जाएगा। तुम मेरे साथ चलो। कुछ अपनी हाजिरी वगैरह भी तो देखो जाकर—कहीं इम्तिहान से ही पत्ता साफ न हो जाय तुम्हारा, लॉ का फाइनल है न ?"

जयन्त को तो शहर लौटने का कोई बहाना चाहिए था। बीस-बाईस दिनों में ही उसे लगने लगा था जैसे वह शकुन से बरसों से बिछुड़ा हुआ है। कभी-कभी तो उसे यह विश्वास भी नहीं होता था कि शकुन से उसकी पुराने दिनों की तरह ही भेंट भी हो सकेगी। उसे शकुन का महत्त्व उससे दूर हट जाने के बाद ही मालूम हो रहा था।

उस रात वह पल-भर के लिए भी नहीं सो पाया। बराबर यही उत्सुकता मन में खलबली मचाती रही कि कब जल्दी से सवेरा हो और नरेश बाबू शहर लौटें और वह भी उड़कर शकुन के पास पहुंच जाए।

अगले दिन कई गांवों का दौरा करते-करते शाम ही हो गई। जब

नरेश बाबू उसे साथ लेकर शहर लौटने लगे तो रात होने लगी थी। लग-भग रात्रि के नौ बजे वह लोग शहर में पहुंचे। नरेश बाबू के घर में पांव रखते हुए वह डगमगा उठा—उसका हृदय फटने लगा। उसे भय लगने लगा कि कहीं शकुन भी बाहर न चली गई हो।

वह नरेश बाबू के साथ चलता अवश्य रहा किन्तु उसका मन मकान के अन्तरंग भाग में जाने के लिए छटपटा उठा।

नरेश बाबू ने बराण्डे से ही आवाज लगाई, "ओ शकुन, देख तो कौन आया है! तेरे मास्टर बाबू का वारण्ट लेकर गया था और इन्हें बांध लाया हूं।" नरेश की आवाज सुनते ही शकुन की आकृति द्वार के बीच दिखलाई पड़ी। जयन्त को देखकर शकुन ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "नमस्ते मास्टर साहब!"

उसने भी प्रति-नमस्कार में हाथ जोड़ दिए। उसके चेहरे पर अनायास झेंप का भाव उभर आया। शकुन ने मुस्कराकर कहा, "कर आए राजनीति? मैं तो सोचती थी आप पार्लियामेंट के मेम्बर बनकर ही लौटेंगे अब तो। गनीमत है चुनाव से पहले ही लौट आए।"

शकुन की व्यंगोक्ति से जयन्त कटकर रह गया। उसने कल्पना की थी कि शकुन उसके चले जाने से बहुत उद्विग्न और खोई-खोई होगी—जिस प्रकार वह स्वयं प्रत्येक क्षण उसको लेकर भावाकुल रहता था वही स्थिति शकुन की हो रही होगी, लेकिन शकुन को सहजभाव से हंसते और परिहास करते देखकर उसे गहरा धक्का लगा। उसने सोचा उसका चला जाना या लौटकर आ जाना सम्भवतः शकुन की दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह भीतर ही भीतर सिमटकर रह गया और उसके भीतर की उत्सुकता पर पानी फिर गया।

जयन्त का साहस दगा दे गया। उसने शकुन की ओर आंखें उठाकर भी नहीं देखा। वह शकुन के कमरे में जाने की बजाय नरेश बाबू के निवास की तरफ बढ़ने लगा।

अब तक नरेश बाबू गली में लौटकर टैक्सी के ड्राइवर को कुछ निर्देश देने लगे थे इसलिए वह लम्बे-चौड़े सहन में अकेला पड़ गया। ऊपर आकाश में दशमी का चांद उभरकर आकाश के मध्य में आ गया था। रा

में हल्की-हल्की सर्दी बढ़ रही थी। इसी क्षण शकुन कमरे के द्वार की चिक हटाकर बाहर सहन में निकल आई और उससे फुसफुसाकर बोली, "क्या आप मुझसे नाराज़ हैं ?"

उसका हृदय अभिमान से भर उठा, "मेरी क्या बिसात है आपसे नाराज़ होने की ?"

"तो फिर मुंह क्यों फुला रखा है ? एक तो बग़ैर बताए भगोड़ों की तरह भाग गए, ऊपर से बात करने को भी तैयार नहीं हो। मैं उधर अपने कमरे में हूं—जल्दी से आ जाना—कभी काका के पास जाकर फिर उधर आने की फ़ुर्सत ही न मिले। रात के दस बजने वाले हैं। और रात को घर जाने की जरूरत नहीं है—उधर काका के कमरे में ही सो जाना—समझे ?" इतना कहकर शकुन फिर अपने कमरे में लौट गई।

नरेश बाबू ने जयन्त को सहन में चहलकदमी करते देखकर पूछा, "कैसे घूम रहे हो भाई ? अन्दर क्यों नहीं गए ?" इसके बाद उन्होंने शकुन की पुकार की।

शकुन लौटी तो ट्रे में चाय और नाश्ते का सामान लेकर। जयन्त और नरेश आगे बढ़ गए। कमरे में पहुंचकर शकुन ने ट्रे मेज पर रखकर कहा, "आप लोग चाय पीजिए तब तक मैं खाने का इन्तज़ाम करती हूं।"

जयन्त ने संकोच से कहा, "अब इतनी रात गए खाना छोड़ो—जो तुम ले आई हो उससे ही काम चल जाएगा।"

नरेश के कुछ कहने से पहले ही शकुन बोल उठी, "क्या देहात में रहकर खाने की जरूरत भी नहीं रह गई ? वहां क्या फूल सूंघकर काम चला लेते थे ?"

"लो बच्चू अब जवाब दो—तुम बड़े अफलातून लगाते हो अपने आप को—शकुन तुम्हारी अक्ल ठीक कर देगी।" नरेश बाबू ने हंसकर कहा।

जयन्त सफाई-सी देते हुए बोला, "नहीं-नहीं, वह बात नहीं है। मैं तो इसलिए कह रहा था कि अब बहुत रात हो रही है—खाना तैयार करने में फिजूल की मुसीबत होगी।" फिर उसने शकुन की ओर देखते हुए नरेश बाबू से पूछा, "आपका नौकर रामबहादुर अभी तक गांव से लौटा या नहीं ?"

नरेश ने लापरवाही से कहा, "अरे भई ये पहाड़ी-नेपाली नौकर एक बार घर जाकर आसानी से कहा वापस लौटते हैं ? रुपये पैसे कमाकर ले जाते हैं तो शादी वगैरह कराकर और सारा रुपया स्वाहा हो जाने पर ही इन्हें मैदान की याद आती है। बहरहाल नौकर हो या न हो, हमारी शकुन को अम्मा ने खाना बनाने की जबरदस्त ट्रेनिंग दे रखी है—यह मिनट-भर में खाना बना देती है। इसके अलावा एक-दो आदमियों का खाना तो हमेशा ही तैयार रहता है। तुम्हारा खाना भी कोई खाना है—चिड़िया जितना खाना खाते हो—उसे तो बनाने की भी जरूरत नहीं पड़ती।"

शकुन लौटकर जाने लगी तो नरेश बाबू को एकाएक टैक्सी के ड्राइवर रतनसिंह की याद आ गई। वह शकुन की ओर मुखातिब होकर बोले, "और हां शकुन, टैक्सी का ड्राइवर भी खाना यही खाएगा। वह मिश्राजी को लखनऊ की गाड़ी पर छोड़ने गया है—उसे रास्ते में कहीं खाने का वक्त नहीं मिलेगा। मैंने उससे जाते वक्त यहीं खाने के लिए बोल दिया था।"

शकुन के जाने के बाद नरेश बाबू कपड़े बदलने चले गए और जयन्त से कह गए, "जैन्त बाबू, आप तब तक चाय पीजिए, मैं अभी दो मिनट में आता हूं।"

जयन्त ने चाय पीते-पीते मेज पर रखे खतों को देख डाला। पूरे क्षेत्र से अनेक पत्र आए हुए थे और लखनऊ से हैंडबिल्स और पोस्टरों के बंडल आए पड़े थे।

नरेश बाबू लौटे तो जयन्त बोला, "अब चुनाव अभियान में पूरी गति आ गई है। हर तरफ काम बहुत जोरों पर चल रहा है।"

नरेश ने कोई उत्साह नहीं दिखाया और खतों पर सरसरी नजर दौड़ाकर बोले, "संसद के लिए पार्टी का आदमी बहुत वाजिब नहीं है। अब तुम देखो लखनऊ के एक नामी डाक्टर की पत्नी पार्टी टिकट पर चुनाव लड़ रही है—ठीक है पैसा वह लोग पानी की तरह बहा सकते हैं, मगर उस औरत को यहां जानता कौन है ? जब तक कोई प्रत्याशी क्षेत्र से परिचित न हो—मतदाता उसके नाम और काम से वाकिफ न हों, उनसे

वोट कैसे दे देंगे ? हमारे प्रत्याशी के खिलाफ कांग्रेस ने हरदयाल जी को खड़ा किया है। हरदयाल जी से यहां का वच्चा-वच्चा परिचित है—उन्होंने दस वार जेल की सजा भुगती है इसे कौन नहीं जानता ?"

जयन्त ने पूछा, "मगर कैन्डीडेट को खड़ा करने का निर्णय तो केन्द्रीय कमेटी ने आप लोगों से पूछकर ही किया होगा ?"

नरेश वावू ने हवा में हाथ हिलाकर मायूसी से कहा, "यही तो दिक्कत है। राजनीति में आदमी के गुण-दोष नहीं देखे जाते—वड़े नेताओं पर उसका असर काम करता है। डाक्टर मेहता लखनऊ में मशहूर हैं—वड़े-वड़े नेताओं को वखूवी जानते हैं। उनकी श्रीमती जी वहां कई क्लवों की अध्यक्षा वगैरह हैं। पार्टी के वड़े-वड़े नेता उनके यहां आते-जाते हैं—उनकी खूव खातिर होती है। इसके अलावा हमारी प्रजातांत्रिक प्रणाली में जो चुनाव का ढंग है उसमें वेपनाह रुपया खर्च होता है। भले और अच्छे सामाजिक कार्यकर्ताओं के पास उतना रुपया कहां होता है जो लाखों रुपये चुनाव में फूंक सकें। वस वही आदमी चुनाव के मैदान में उतर पाता है जो रुपये का मुंह नहीं देखता—पानी की तरह रुपया वहाने की शक्ति रखता है।" अन्त में नरेश वावू ने वात खत्म करते हुए कहा, "अव जो भी होगा सामने आ जाएगा। मुझे तो मिसेज मेहता के जीतने की कोई खास उम्मीद है नहीं।"

जयन्त कुछ और भी पूछना चाहता था मगर उसी समय शकुन खाने के लिए पूछने आ गई। उसने पूछा, "आप लोगों का खाना यहीं ले आऊं या चाचा (वह अपने पिताजी को चाचा कहती थी) के कमरे में वैठकर खाएंगे ?"

"अरे यहां लाने की तवालत क्यों करती है—दादा के कमरे में ही रख—हम लोग आते हैं।" कहकर नरेश वावू जयन्त से वोले, "चलो भई जैन्त साहव—वहुत रात हो रही है, हम लोग खाना खाते हैं।"

हरीश वावू के कमरे में शकुन ने उन दोनों का खाना लगा दिया। नरेश वावू ने खाने पर नज़र डालकर कहा, "वस यही वना है जैसा-तैसा—पेट भर लीजिए और क्या !"

जयन्त ने थालियों पर दृष्टि डालकर कहा, "क्या कह रहे हैं आप ?

यह जैसा-तैसा खाना है ? कितनी मेहनत से इतनी जल्दी खाना तैयार किया गया है यह बात क्या कोई मानी नहीं रखती ?"

"चलिए आप इतना कन्सीडरेशन कर रहे हैं—यही क्या कम है—काका की नजर मे इस खाने को खाने का दर्जा नही दिया जाता।" शकुन ने पानी का जग मेज पर टिकाते हुए कहा।

नरेश बाबू ने जयन्त से कहा, "शुरू करो भई—या तो दाल-भाजी मे नमक सिरे से गायब होगा या फिर जहर बन जाने की हालत तक पहुंचा होगा।" यह कहने के साथ ही उन्होंने शकुन की तरफ देखा और कुटिलता से हंस पड़े।

"इसीलिए मैंने हलवा भी रख दिया है कि आपके कड़वेपन में थोड़ी-सी मिठास भी मिल जाय।" शकुन ने भी हंसते हुए कहा।

"हलवा भी कौन खा सकेगा ? उसमें सूजी कच्ची होगी।" नरेश जी ने टुकड़ा तोड़ते हुए कहा।

खाने में किसी तरह की कमी नही थी। खाना खाते हुए जयन्त समझ गया कि यह नोक-झोक चचा-भतीजी के बीच महज छेड़खानी के लिहाज से चल रही थी। शकुन बहुत लजीज खाना बनाने में माहिर थी, जयन्त पर यह बात उस रात ही नहीं आगे जाकर भी बहुत बार प्रकट होती रही।

नरेश बाबू खाना खत्म करने के बाद मकान के भीतर अपनी माता जी से मिलने चले गये तो कमरे मे जयन्त और शकुन दोनों अकेले ही रह गए। शकुन ने बर्तन समेटकर ट्रे मे रखते हुए जयन्त से कहा, "आप अभी भाग मत जाना—मैं एक मिनट मे आती हूं।"

• "ठीक है, मैं बैठा हूं।" कहकर जयन्त बाहर नल पर हाथ-मुंह धोने चला गया। जब वह बाहर से लौटा तो शकुन कमरे में आ चुकी थी। वह दरवाजे मे लगकर खड़ी हो गई और जयन्त की ओर देखकर कटाक्ष करते हुए बोली, "तो अब पूरी तरह राजनीति मे रहोगे ! अपने या किसी और के पढ़ने या इम्तिहान देने की तो बात खत्म ही हो गई लगती है !"

जयन्त ने कहा, "सबसे पहले तो मैं तुम्हारे प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि तुमने इतना स्वादिष्ट भोजन कराया। मैं बर्नार्ड शॉ की बात आज शत-प्रतिशत मान गया। उसने जो यह कहा है कि

आदमी के दिल में पेट के रास्ते से घुसती है, वह बात अपनी जगह नींव का पत्थर है। जरूर ही शॉ के जीवन में कोई औरत स्वादिष्ट खाने के बूते घुसी होगी। आदमी ठहरा पेटू प्राणी—उसे बढ़िया खाना दो और पालतू बना लो।"

शकुन मोहक ढंग से मुस्कराते हुए बोली, "दोनों ही एक-दूसरे के पेट में घुसते हैं—किस तरह घुसते हैं यह बात अलग है। आदमी-औरत दोनों का अपना-अपना स्टाइल है यह तो। रही बात खाने की कृतज्ञता की, उसे मैं यही मान लेती हूं कि आप बड़े दिखावटी किस्म के आदमी हैं।"

शकुन की बात सुनकर जयन्त सकते में आ गया। उसने पेट में घुसने के जिस मुहावरे को इतने हल्के ढंग से कह दिया था उसका कोई और भी रूप हो सकता है यह वह सोच भी नहीं सकता था। आदमी भी औरत के पेट में घुसता है, यह बात कहने में शकुन को ज़रा भी झिझक नहीं हुई थी। काश ! वह शकुन की भाषा में उसके जीने की ललक को भी तलाश कर पाता तो शकुन आज किसी और के साथ यों बेगानी बनकर न चली गई होती। खैर, यह सब तो होना ही था। जिस शालीनता, संकोच और झिझक को जयन्त अपने ऊपर हर क्षण लपेटे घूमता था उसे शकुन भर-सक उधेड़-उधेड़कर फेंकती ही रहती थी। और अन्त में तो वह सारी शर्म-हया को तिलांजलि देकर उसके सामने प्रार्थिनी के रूप में पहुंच ही गई थी।

जब तक नरेश बाबू नहीं लौटे, शकुन और जयन्त बातें करते रहे। इसी दौरान टैक्सी का ड्राइवर भी मिश्राजी को गाड़ी पर छोड़कर लौट आया था। शकुन ने ड्राइवर का खाना नरेश बाबू के कमरे में ही पहुंचा दिया था और वह बीच-बीच में जाकर खाने के बारे में पूछती भी रही थी। जयन्त के मन में बार-बार यह पूछने की इच्छा होती थी कि वह शकुन से मालूम करे कि उसने जयन्त को उस रात वहीं ठहरने का आग्रह क्यों किया था, पर उसकी भीतरी झिझक और दब्बूपन ने उसे यह बात कहने का अवसर ही नहीं दिया।

जयन्त और नरेश जब सोने के लिए गए तो रात लगभग आधी बीत चुकी थी और वातावरण में सर्दी बढ़ गई थी।

जयन्त फिर चुनावी प्रचार के लिए नही गया। मार्च मे शकुन और उसे दोनो को ही परीक्षा देनी थी। वह शकुन को बदस्तूर पढाने जाता था मगर पढ़ाई कम ही हो पाती थी। अक्सर वह शकुन का चेहरा एकटक देखता रहता था। परीक्षाओ के दौरान ही विधानसभा और लोकसभा का चुनाव हो गया था और जैसा कि नरेश बाबू का अनुमान था मिसेज मेहता लोकसभा के चुनाव मे भारी मत से पराजित हो गई थी। आगे कुछ दिनो मे ही समाजवादी दल का किसान मजदूर प्रजापार्टी के साथ राजनीतिक गठबन्धन हो गया था।

परीक्षा के बाद वह बडे भाई के पास चमोली चला गया था। उसका मन वहां एक क्षण को भी नही लगता था, लेकिन ग्रीष्मावकाश मे शकुन को पढाने का भी कोई प्रश्न नही उठता था इसलिए शकुन के पास मुक्त रूप से बैठने का भी कोई बहाना उसके पास नही रह गया था।

जब वह चमोली मे था तो शकुन उसकी बहन ज्योति के पास कई बार आई थी और उसका पता मागकर ले गई थी। चमोली मे रहते उसको शकुन के कई पत्र मिले थे जिनमे उसने सकेत मे उससे जल्दी से जल्दी लौटने का अनुरोध किया था।

जयन्त निरुद्देश्य पहाड़ों मे विचरता रहता था और शकुन के पत्रो को बार-बार पढता रहता था। यद्यपि शकुन के पत्रो की भाषा मे कोई घुमावदार भाषा नही होती थी, पर वह उनमे गहरे अर्थ तलाश करता रहता था। वह कभी नही जान पाता था कि शकुन उसके जीवन मे यथार्थ के धरातल पर कहां स्थित थी—महज हवाई कल्पनाओ के सहारे शकुन को जयन्त ने अपने जीवन मे प्रतिष्ठित कर लिया था।

वह चमोली से लोटकर आया था तो उसने कानून की क्लास मे दाखिला ले लिया था और शकुन ने अंग्रेजी साहित्य मे एम० ए० करने का इरादा जाहिर किया था। एक बार तो उसका यही विचार था कि वह प्राइवेट फार्म भरेगी, पर बाद मे जयन्त ने उसे समझाया था कि अंग्रेजी साहित्य की पढाई घर बैठकर नही की जा सकेगी और वह थोडे दिनो मे ही घर बैठकर ऊब जाएगी। जयन्त ने ज्योति को भी समाजशास्त्र मे दाखिला दिलवा दिया था और ज्योति-शकुन का एक-दूसरे के पास आना-

जाना बना रहता था।

एक दिन शकुन कुछ और लड़कियों के साथ जयन्त के घर आई तो किसी बहाने से जयन्त के कमरे में भी पहुंच गई। उसने जयन्त के अस्त-व्यस्त कमरे को पूरी व्यवस्था दे दी और कुर्सियों-खूंटियों पर टंगे बेतरतीब कपड़ों को तह्या कर कायदे से सूटकेस में लगा दिया और शकुन से कहती गई कि वह जयन्त को इस सम्बन्ध में कुछ भी न बतलाए।

जब जयन्त लॉ की क्लास से लौटकर रात को घर आया तो अपने कमरे की व्यवस्था देखकर दंग रह गया। उसने ज्योति को बुलाकर पूछा कि यह मेहरबानी उस पर कैसे नाज़िल हो गई। ज्योति ने बात को घुमा-फिराकर कहा, "बहनों को कभी-कभी रहम तो आ ही जाता है। हालांकि भाइयों की जिन्दगी में कभी-न-कभी कोई ऐसी सुघर गृहिणी आ ही जाती है जो उनकी लम्बे अर्से की लापरवाही को एक शऊर दे देती है, मगर जब यह क्रम देने वाली कभी आती ही दिखाई न पड़े तो दया करके वही इस काम को पूरा कर देती हैं।"

जयन्त ने उसकी बात पर घोर अविश्वास प्रकट करके कहा, "रहने दे अपनी दया और मेहरबानियां—मैं क्या तुझे जानता नहीं हूं। अपने कमरे की हालत देख जाकर—फिर शीशे में अपना मुंह देख, कि तेरे बस का यह काम है या नहीं। तूने अपना जो सूटकेस पलंग के नीचे सरकाकर रखा हुआ है उसे सालों से टस से मस नहीं होने दिया। कुछ नहीं तो सौ मन धूल तेरे सन्दूक के नीचे होगी। चली है बात बनाने कि तैंने मेरे कमरे को ठीक किया है।"

जयन्त ने ज्योति को खूब उकसाया मगर उसने असली बात नहीं बतलाई। अगले दिन जब उसने कपड़े निकालने के लिए अपना सूटकेस खोला तो एक क्षण में ही उसे सारी वास्तविकता का ज्ञान हो गया। सन्दूक के ऊपर ढक्कन वाले पल्ले में जो पाकेट थीं उनमें शकुन का एक भी पत्र नहीं था। वह बखूबी जानता था कि इन पत्रों को उसके सन्दूक से ज्योति नहीं हटा सकती थी।

उसने ज्योति से हंसते हुए कहा, "बिल्ली तू एक नम्बर की झूठी है, कहे तो मैं बतला दूं मेरा कमरा किसने ठीक किया है?"

ज्योति ने वास्तविक आश्चर्य व्यक्त किया, "अच्छा बताओ—मैं शर्त बद सकती हूं।"

"शर्त बदने पर भी तू जीत नहीं सकती। चल जाने दे।" जयन्त ने शकुन का नाम बतलाने से बचना चाहा।

इस पर ज्योति ने उसे दूसरी तरह घेरा, "अच्छा भैया! सच-सच बतलाना, क्या कोई लड़की आपके पास आती है?"

इस पर जयन्त ने कृत्रिम क्रोध से आंखें तरेरकर कहा, "तू क्या एकदम बेहया हो गई है? जब तक तेरा इस घर से देशनिकाला नहीं हो जाएगा, क्या कोई लड़की इस घर में आने की हिम्मत कर पाएगी?"

"आपके पास कोई लड़की आए और मैं भी यहीं बनी रहूं, इसमें क्या कोई खास बैर-भाव दिखलाई पड़ता है?"

"पड़ता है। तेरे रहते यहां लंकाकांड उपस्थित होने में क्या देर लग सकती है?"

"अच्छा! तो फिर दादा इस घर में मेरे रहते भाभी को कैसे ले आए?"

"भाभी को तूने टिकने कहां दिया—उनका तो आते ही कुछ महीनों में चालान कर दिया।" जयन्त ने खिलखिलाकर कहा।

उस दिन की बात हंसी-मजाक में ही खत्म हो गई। ज्योति ने शकुन और जयन्त के बीच चल रहे कोमल व्यापार को मन-ही-मन गहराई से समझ लिया लेकिन खुलकर इस सम्बन्ध में जयन्त से कुछ नहीं पूछा। आगे जाकर ज्योति ने शकुन के मन की थाह भी ले ली और उसे निश्चय हो गया कि दोनों का परस्पर गम्भीर अनुराग है।

पलक झपकते वर्ष निकलते चले गए। शकुन ने अंग्रेजी में एम० ए० कर लिया और जयन्त लॉ ग्रेजुएट होकर चार्टर्ड एकाउंटेंट का कोर्स पूरा कर आया। उसके लिए अपने ही नगर में काम की कोई कमी नहीं रही, लेकिन शकुन को लेकर उसको बेचैनी निरन्तर बढ़ती ही चली गई। शकुन से अब पुराने दिनों की तरह घंटों वार्तालाप करना सम्भव नहीं रह गया था। उसकी पढ़ाई पूरी हो चुकी थी। शकुन ज्योति के पास भी अब ज्यादा नहीं आ पाती थी। शकुन उससे बरबस यह उम्मीद लगाए हुए थी कि वह

उसके काका से कभी-न-कभी अपने और शकुन के सम्बन्ध में जरूर बातें करेगा, पर अपनी भीरु प्रकृति के कारण वह नरेश बाबू से कभी खुलकर कोई बात नहीं कर पाया।

धीरे-धीरे दादीजी के आग्रह से नरेश और शकुन के पिता हरीश जी ने इधर-उधर लड़के देखने शुरू कर दिए और अन्त में एक लड़का ठीक भी कर दिया गया। नरेश ने जयन्त से मिलने पर जब इस लड़के के सम्बन्ध में सब कुछ बतलाया तो उसके पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। वह शकुन से इस बारे में बातें करने का अवसर तलाशता ही रह गया और शादी की तिथि भी पक्की हो गई।

जब उससे कुछ भी नहीं बन पड़ा तो वह एक दिन किसी को बिना बतलाए शहर छोड़कर भाग निकला, लेकिन उसे कहीं चैन नहीं पड़ा और वह बीच रास्ते से ही लौट पड़ा। जिस समय लौटते हुए वह अपनी गली के मोड़ पर था तभी उसे शकुन अपनी दो सहेलियों के साथ आती हुई मिल गई थी। जयन्त के साथ वह दोनों उसके घर गई थीं और शकुन ने उसके सामने चुनौती भरा प्रस्ताव रखा था जिसे वह अपनी मानसिक अस्थिरता और दैहिक शिथिलता के कारण टाल गया था और बाद में जो भी घटित हुआ था उसने उसे तोड़कर रख दिया था।

एकाएक जयन्त की तन्द्रा टूट गई। प्राची में अंधेरे के बावजूद अरुणाभा फैलने लगी थी और पक्षियों के कलरव से आकाश मुखरित हो उठा था। उस झूले जैसी चारपाई में जयन्त उठकर बैठ गया और उसे शकुन के बिछोह का नये सिरे से अहसास हुआ। एक लम्बी सांस भरकर उसने मन-ही-मन अनुमान लगाया, "शकुन अब तक कहां पहुंच गई होगी?"

जैसे आदमी अन्ततः किसी भी दुखद यथार्थ को स्वीकार कर लेता है, जयन्त ने भी यह मान लिया कि अब शकुन उसके जीवन से पूरी तरह जा चुकी है और उसके लौटकर आने का कोई चिह्न शेष नहीं रह गया है।

वह उस झिलंगी चारपाई से किसी तरह बाहर निकला और छत पर

चक्कर काटने लगा। हालांकि अभी हवा में ताजगी थी और जून की भभक का कोई अहसास नहीं हो रहा था लेकिन सूरज ऊपर आकाश में चढ़ने लगा था।

थोड़ी देर में प्रभाकर भी उठ गया और उसने अपने कमरे से बाहर आते हुए कहा, "कहो भई मियां, रात पालने में झूलते हुए कैसी कटी?"

जयन्त ने रात की कोई बात न कहकर उसकी ओर देखा और बोला, "अच्छा अब मैं चलता हूं।"

"हां चलोगे तो तुम हो ही और तुम्हें रोकना भी कौन चाहता है! लेकिन अभी चाय बनाता हूं, एक प्याला चाय पीकर चले जाना।"

"छोड़ो चाय-वाय—बाद में देखा जाएगा अब मैं चलता हूं।" कहकर जयन्त चल दिया।

प्रभाकर ने उसे हैरत से देखा और बोला, "अच्छा तू थोड़ी देर कहीं बाहर घूमकर आ, तब तक मैं बाथरूम वगैरह से फारिग हो लूंगा। मगर लौट जरूर आना मैं चाय तेरे साथ ही पिऊंगा।"

जयन्त ने स्वीकृति में सिर हिलाया और वह प्रभाकर के कमरे में होता हुआ जीने से उतर कर बाहर चला गया।

चार

जयन्त अनिश्चय में प्रभाकर के घर से निकला और काफी देर तक वीरान गलियों में घूमता रहा। सड़कों पर मेहतर अभी झाड़ू लगा रहे थे और आवाजाही बहुत कम थी।

जब जयन्त निरुद्देश्य घूमते-घूमते थक गया तो उसे घर की याद आई। भैया-भाभी और ज्योति उसको लेकर कितने परेशान हो चुके होंगे यह बात पहली बार उसके मस्तिष्क से टकराई। अगर वह कहकर घर से निकलता या उसकी सेहत इतनी खराब न होती तो शायद घर में कोई चिन्ता न करता, पर पन्द्रह दिनों से बराबर बिस्तर पर पड़ा रहने वाला आदमी इस तरह एकाएक घर से गायब हो जाय तो आतंक व्याप्त हो

जाता है। इसके अलावा जब पिछली रात उसके बड़े भाई प्रभाकर के घर उसके बारे में मालूम करने आए थे तब भी उन्हें कुछ पता नहीं चल सका था।

जयन्त बुरी तरह से परास्त होकर अपने घर की ओर चल दिया। उसके पांव चलते-चलते डगमगा उठे थे और आंखों के सामने दुर्बलता की वजह से तारे उड़ते नज़र आ रहे थे।

जब वह द्वार पर पहुंचा तो अंदर से दरवाजा बंद था। शायद अभी सब लोग सोकर उठे नहीं थे। उसने द्वार पर दस्तक दी तो थोड़ी देर बाद आकर ज्योति ने दरवाज़ा खोला और उसे देखकर द्वार से हटते हुए बोली, "कहां चले गए थे भैया? दादा रात को न जाने कहां-कहां ढूंढ़ते फिरते रहे। दादा आधी रात के बाद घर में घुसे आकर। नरेश बाबू के यहां से भी आदमी दो बार आकर पूछ गया।"

जयन्त ने घर में दाखिल होकर दरवाजे की कुण्डी बन्द कर दी। उसने ज्योति को कोई उत्तर नहीं दिया और पांव घसीटते हुए अपने कमरे में चला गया। पलंग पर बैठकर उसने धूल में सनी हुई चप्पलों को हाथों से खींचकर उतारा और फर्श पर फेंक दिया। उसकी कमर में बड़ी जबरदस्त हड़कल हो रही थी। वह कटे पेड़ की मानिन्द बिस्तर पर ढेर हो गया।

दस-बारह मिनट बाद ज्योति जब चाय का प्याला लेकर आई तो जयन्त सो चुका था। ज्योति चाय लेकर लौट गई।

जयन्त कई घंटे तक गहरी नींद में डूबा रहा। रात्रि-जागरण और मीलों लम्बा चक्कर काटने की वजह से वह बुरी तरह थक गया था। उसकी नींद में किसी ने बाधा नहीं पहुंचाई।

लगभग एक बजे उसकी आँख खुली तो उसका गला प्यास से सूख रहा था। उसने बहुत जोर लगाकर उठने की चेष्टा की पर बदन ने पूरी तरह जवाब दे दिया। वह प्यास से बेहाल होकर बिस्तर पर चुपचाप पड़ा रहा।

उसने किसी के आने की प्रतीक्षा की पर देर तक उधर कोई भी नहीं आया। दरवाज़े के पास उसे अपने भतीजे बबलू की आवाज सुनाई दी तो उसने भरसक ज़ोर लगाकर उसे आवाज़ दी। जयन्त के गले से बहुत

करख्त-बेसुरी और फटी हुई आवाज उभरी। उसकी आवाज सुनकर बबलू ने दहलीज़ पर खड़े होकर दरवाज़े से झांका तो उसने बबलू को हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाया।

बबलू कमरे के भीतर घुसा और उसके बिस्तर के पास आकर खड़ा हो गया। जयन्त ने बबलू से पानी लाने के लिए कहा और करवट बदलकर पड़ रहा।

पानी बबलू नहीं उसकी भाभी लेकर आई और उसके नज़दीक पहुंचकर बोली, "भैया उठो। लो पानी पी लो।"

उसने कुहनी के बल बिस्तर पर बैठकर पानी का गिलास लिया और एक सांस में पूरा गिलास खाली कर गया। भाभी ने पूछा, "कैसी तबियत है आपकी?" उन्होंने उसके रात-भर घर में न रहने की कोई कैफियत तलब नहीं की।

"ठीक हूं, भाभी!" फिर एक क्षण ठहरकर जयन्त ने पूछा, "दादा कहां हैं?"

"वो स्टेशन गए हैं। उन्हें यहां आए हुए दस दिन हो गए हैं—लौटना भी तो है। लौटने के लिए टिकट रिजर्व कराने गए हैं। बर्थ तो इतनी जल्दी नहीं मिलेगी—शायद बैठने के लिए सीट ही मिल जाय।"

"हूं," कहकर जयन्त फिर बिस्तर पर निढाल होकर पड़ रहा। भाभी दो-तीन मिनट अनिश्चय की स्थिति में खड़ी रही और फिर कुछ कहे बिना कमरे से बाहर चली गई।

उसे जगा देखकर ज्योति चाय बनाकर ले आई और उसके हाथ में चाय का गिलास देते हुए पूछने लगी, "तुम्हारा जी अब कैसा है—क्या खाओगे?" फिर उसने अपने आप ही कहा, "साबूदाना या खिचड़ी बना दूंगी।"

"देखा जायगा, अभी कुछ बनाने की जरूरत नहीं है।" कहकर उसने करवट बदल ली।

जयन्त के बड़े भाई लगभग तीन बजे लौटकर आए और यह जानकर कि जयन्त घर में ही है—उसके कमरे में ही आ गए। वह उन्हें देखकर

बिस्तर पर बैठ गया और पूछ बैठा, "क्या आपकी सीट का रिजर्वेशन हो गया ?"

"हां हो तो गया, मगर मेरा नाम वेटिंग लिस्ट में है। आठ दिन से पहले तो बर्थ मिलने की कोई उम्मीद ही नहीं थी।" इतना कहकर उन्होंने बबलू को पुकारा और जेब से रुमाल निकालकर चेहरे और गर्दन पर बहते पसीने को पोंछने लगे।

जयन्त उम्मीद करता रहा कि वह उसके रात-भर घर से गायब रहने की कैफियत जरूर तलब करेंगे, मगर उन्होंने वह बात ही नहीं छेड़ी और बोले, "अब तुम्हारी तबियत तो संभल गई है। यहां बहुत ज्यादा गर्मी बढ़ गई है। मैं तो परसों निकल जाऊंगा, तुम अपनी भाभी और ज्योति को लेकर थोड़े दिनों के लिए जम्मू चले आना। कल-परसों में ही बर्थ रिजर्व करा लेना। रात की गाड़ी से चलोगे तो अगले दिन पहुंच जाओगे। मीनल के इम्तिहान परसों खत्म हो जाएंगे तो मेरे पहुंचने तक वह भी हॉस्टल से आ जाएगी।"

दादा के सामने वह 'हां' 'ना' से ज्यादा कुछ बोलता ही नहीं था सो उसने 'ठीक है' कहकर बात समाप्त कर दी। जरा देर बाद ही बबलू पानी का गिलास लेकर आ गया और अपने पिताजी के हाथ में गिलास देकर बोला, "पापू, मैं तो आपके साथ चलूंगा—मीनल दीदी वहां अकेली रहेगी न।"

"बेटे, सीट तो एक ही हो पाई है। ऐसी बुरी गर्मी में भीड़भरी गाड़ी में तुम सफर नहीं कर पाओगे। अभी थोड़े दिन बाद चाचा आएंगे तो अपनी ममी और ज्योति बुआ को साथ लेकर आना।" जयन्त के बड़े भाई ने पानी पीकर गिलास बबलू को थमा दिया और कुर्सी से उठते हुए बोले—"चलो बबलू! मैं नहाने जा रहा हूं, मेरे कपड़े गुसलखाने में रखवाओ।"

बबलू चला गया तो वह जयन्त की ओर उन्मुख होकर बोले, "अभी तुम काफी कमजोर हो। लगकर दवा करते रहो—आराम की सख्त जरूरत है।"

जयन्त भीतर तक स्तब्ध रह गया। दादा ने उसके रात-भर घर से

अनुपस्थित रहने पर कोई भी टिप्पणी नहीं की थी पर फिर भी संकेत में सब कुछ कह दिया था। जयन्त उनको कोई उत्तर नहीं दे सका। वह कमरे से बाहर चले गए तब भी वह गुमसुम हालत में छत की ओर ताकता रहा।

लगभग बीसेक मिनट बाद ज्योति उसके लिए खाना लेकर आई तो उसने पलंग पर बैठकर ही चुपचाप खाना खा लिया, और पड़कर सो गया।

शाम को सात बजे के बाद उसकी आंखें खुली। कमरे में अंधेरा होने लगा था मगर खिड़की के बाहर अभी शाम का ठहराव नजर आता था। उसका मन-मस्तिष्क एकदम खाली था और देह में कुछ भी कर सकने का उत्साह शेष नहीं रह गया था।

जयन्त ने देर तक सोचा कि उसे इस समय घर से निकल कर कहीं बाहर जाना चाहिए, मगर यह नहीं समझ पाया कि कहां जाकर उसे थोड़ी शांति का अनुभव हो सकता है। उसने उस तरफ से अपना मस्तिष्क हटाकर नहाने के बारे में सोचा। यही काम ऐसा था जिसे बिना किसी संकल्प-विकल्प के बिना अपने बूते किया जा सकता था।

जयन्त ने अपने कमरे से बाहर निकलकर देखा कि घर में सिर्फ ज्योति है और भाई, भाभी तथा बबलू कहीं बाहर चले गए हैं। उसने ज्योति से उन लोगों के बारे में मालूम किया तो पता चला वह सब लोग मंगल का प्रसाद चढ़ाने मन्दिर चले गए हैं और बस आते ही होंगे।

जयन्त ने उन लोगों के लौटने से पहले ही घर से बाहर निकल जाने में सुविधा समझी, क्योंकि बड़े भाई की उपस्थिति में उसे घर छोड़ने में हिचक महसूस होती। हालांकि उसके बड़े भाई की आदत ज्यादा कुछ कहने की नहीं थी, पर वह उसकी सेहत को लक्ष्य करके विशेष परिस्थिति में कुछ कह ही सकते थे।

जयन्त ने जल्दी-जल्दी स्नान किया और कपड़े पहने। जब वह घर से बाहर जाने लगा तो ज्योति ने पूछा, "खाना क्या बनाऊं?"

"कुछ भी बना लेना या कुछ भी मत बनाना। दरअसल देर से ही तो खाया है, अब उतनी जल्दी मैं क्या खाऊंगा?" कहकर उसने ज्योति की बात सुनने की प्रतीक्षा नहीं की और लम्बे-लम्बे डग भरता गली में ओझल हो गया।

जयन्त गली से वाहर निकलकर सड़क पर पहुंचा तो उसे खयाल आया कि अव कहां जाना चाहिए। उसकी विचित्र मनःस्थिति थी। वह किसी परिचित से अंतरंग वातें करने से वचना भी चाहता था और किसी घनिष्ठ व्यक्ति से मिलना भी चाहता था। शुरू में उसने प्रभाकर के घर जाने की वात पर विचार किया, मगर उसे लगा कि प्रभाकर उसके वीते कल को किसी न किसी रूप में जरूर छेड़ेगा अन्यथा उन दोनों के मध्य वातचीत करने का मुद्दा भी क्या हो सकता है? अन्त में वह यों ही निरुद्देश्य भटकने की गरज़ से सड़क पर वढ़ गया।

जव वह घंटे-डेढ़ घंटे इधर-उधर काफी भटक लिया तो उसके पैर स्वतः ही नरेश के घर की दिशा में वढ़ लिए।

जव वह नरेश के घर पहुंचा तो उसे वहां उत्सव के वाद का उजड़ापन नज़र आया। हालांकि वाहर लम्वे-चौड़े सहन में कई पलंग और चार-पाइयां विछी हुई थीं जिन पर कोई-न-कोई लेटा या वैठा था, मगर कोई हलचल दिखाई नहीं पड़ रही थी, वल्कि एक विचित्र-सा सन्नाटा फैला हुआ था।

जयन्त को लगा जैसे उस घर-द्वार को, सारी भीड़ को किसी एक तत्त्व ने अनुपस्थित होकर अर्थहीन वना डाला था। वीती कल और आज की सन्ध्या के दरम्यान कोई लम्वा-चौड़ा व्यवधान नहीं था पर उस जीते-जागते घर को जैसे कोई शाप लग गया था।

जयन्त कहीं ठहरे विना शकुन के कमरे के वाहर खड़े रातरानी के गाछ के नीचे ज़ाकर भीतर की आहट लेने लगा। कमरे में तेज़ रोशनी का वल्व जल रहा था और दरवाज़े अधखुले थे। भीतर से थोड़ा उजाला वाहर तक आ रहा था। द्वार के पास खड़े रहकर वह पहचानने की कोशिश करता रहा कि वहां कौन लोग वैठे वातें कर रहे थे।

एक वार जयन्त की इच्छा हुई कि वह किसी से विना मिले ही लौट जाय, वहां वह किससे क्या वातें करेगा, पर वह ऐसा नहीं कर सका। वह आगे वढ़ा और झिझकते हुए दहलीज पर जाकर खड़ा हो गया। तभी हरीश वावू उस तरफ आते दीख पड़े। उन्होंने उसे यों खड़े देखा तो गर्म-जोशी से वोले, "अरे जयन्त! भई तुम कल स्टेशन से ही किधर गायव

हो गए थे ? हम लोगों ने इधर-उधर काफी ढूंढ़ा पर तुम्हारा कहीं पता ही नहीं चला। आओ भीतर आओ—अम्मा तो तुम्हें कई बार याद कर चुकी हैं।"

उसने पिछली शाम की कोई कैफियत नहीं दी—वह कमरे में जाकर खड़ा हो गया। माताजी दीवान पर बैठी अपनी कली पी रही थी। उन्होंने अपनी आंखें ऊपर उठाकर उसे देखा और बोलीं, "जैन्ती बेटा, यहां मेरे ढिंग (नज़दीक) आवो।" तुमकू तो अब के बेमारी ने धर दबोचो—ब्याव तिहारे बिरा भौत फीको रह्यो लल्ला। शकुन बिचारी रोवती ई चली गई यहां तें। अस्टेसन पे पहुंचे हुते नरेश की बऊ ने मोय बतायो कें बड़ी कमजोरी की हालत में पोंचे तुम।" शकुन की दादी जी अपने सहज अंतरंग भाव से मन की बातें कहती चली गईं। उनकी बातों को सुनते हुए जयन्त विगलित हो उठा।

हरीश बाबू ने अपनी माता जी के चुप हो जाने पर जयन्त की ओर मुखातिब होकर कहा, 'सब लोग आज दोपहर को ठीक-ठाक पहुंच गये। सतेन्द्रजी (शकुन के श्वसुर महोदय) का टेलीफोन आया था तीन बजे के करीब।" फिर वह मुक्ति का भाव प्रदर्शित करते हुए बोले, "अम्मा शकुन की शादी को लेकर मेरे पीछे पड़ी हुई थी। पिछले छह महीनों से तो इन्होंने मेरे पैर ही उखाड़ दिए थे। लड़का घर बैठे ही मिल गया। मैं देहरादून एक दोस्त के यहां ठहरा हुआ था। उससे मैंने कोई ठीक-सा लड़का बताने की बात कही तो उसने फौरन सतेन्द्र जी का नाम लिया, बोले—लड़का एक्जीक्यूटिव इंजीनियर है—उन लोगों की सुन्दर पढ़ी लड़की के अलावा और कोई भी डिमान्ड नहीं है। चलो अभी बातें कर लेते हैं। बस हम सतेन्द्रजी के घर पहुंचे और चुटकी बजाते सारा कुछ तय हो गया। हेमेन्द्र (शकुन का पति) भी इत्तिफाक से आया हुआ था। मैंने देखा—हेमेन्द्र मुझे बड़ा गम्भीर और शीलवान लड़का लगा। इसके बाद हम लोग दो दिन के लिए हरिद्वार गये थे—शकुन को भी साथ लेते गये थे। वहीं हरिद्वार में शकुन ने उसे देख लिया—हेमेन्द्र ने भी शकुन को देखकर पसन्द कर लिया। इसके बाद तो सारा काम आसान हो गया।" थोड़ी देर ठहरकर हरीश बाबू फिर बोलने लगे, "भई जैन्त, सच पूछो मेरे जैसे अनप्रैक्टिकल

(अनाड़ी) आदमी से तो यह काम होना मुश्किल ही था। पर वह कहते हैं कि जहां लड़के-लड़की का संयोग होता है वहीं सम्बन्ध वनकर रहता है।" अपनी वात खत्म करके हरीश वावू पुलकित भाव से जयन्त को देखने लगे।

जयन्त, जिसके मन पर अभी तक वड़ा भारी वोझ था, जो समझता था कि शायद शकुन की शादी विना उसकी मर्जी के ही तय हो गई थी, यह जानकर किंचित राहत महसूस करने लगा कि शकुन एक व्यवस्थित घर की वहू वनकर गई है। जैसा कि शकुन ने उसके घर पर प्रस्ताव रखा था, यदि भावुकतावश कहीं उस प्रस्ताव को मान लेता तो कितना भयंकर काण्ड हो जाता! अच्छे-भले घर में आर्थिक सुरक्षा की स्थितियों में पत्नी शकुन उसके साथ रहकर क्या पाती? थोड़े ही दिनों में अभावों की तपिश उसके जीवन-रस को चूस लेती और फिर अनुराग के स्थान पर विग्रह का ताण्डव ही शेष रह जाता।

हरीश वावू ने शकुन की वात छोड़कर उससे पूछा, "जैन्त वावू, आपने तो चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट का कोर्स पूरा करके अपना काम शुरू कर ही दिया है, अव शादी क्यों नहीं कर डालते?" और यह कहकर मुस्करा उठे।

जयन्त वावू ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरी और जवरन मुस्कराने की कोशिश करके वोला, "आपने तो अभी कुछ देर पहले कहा था कि यह सव संयोग से ही सम्भव होता है। लगता है मेरे हिस्से का संयोग अभी कहीं अटका पड़ा है। कभी वह मुझ तक आ पहुंचा तो फिर मैं भी उसे क्या टाल पाऊंगा?"

"हां, यह तो है," कहते हुए हरीश वावू उठकर वाहर जाने लगे। जव वह कमरे से वाहर सहन में निकल गये तो जयन्त ने हरीश की माताजी से पूछा, "नरेश वावू दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।"

"नरेश आवते ई होन्गे। वड़ी अवेर ते निकसे हैं।" कहकर दादी जी ने अपनी कली गुड़गुड़ा कर नीचे फर्श पर रख दी और उससे पूछने लगीं —"जोत (ज्योति) की पढ़ाई तो खतम है ही गई—वाको व्याव कन्ने की न्ना सोची?"

जयन्त ने सोचा कि इन लोगों ने अभी-अभी शकुन का विवाह किया

है इसलिए घर के हर आदमी के दिमाग में बस वही एक बात घर कर गई है। शायद सबको अब यही लगने लगा है कि दुनिया में कोई भी कुंआरा क्यों रह जाय? उसने बात को टालने के अंदाज में कहा, "अम्मा जी—बड़े भैया ने इधर-उधर कुछ लड़के देखे तो हैं, देखिए कब अच्छा लड़का मिलता है। आप तो जानती ही हैं कि आजकल लड़कियां बहुत पढ़-लिख जाती हैं और फिर उनके लिए माकूल लड़का मिलना आसान नहीं रहता। जो भी हो शादी तो उसकी भी जल्दी ही करनी पड़ेगी।" कहकर जयन्त कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया।

शकुन की दादी ने उसे उठते देखकर कहा, "क्यों लला, कहाँ चले? अभी तो बैठो—चाय पीओ—बऊ (नरेश बाबू की पत्नी) बस चाय लाई रई है—दो मिलट में।"

दादी जी का ठेठ भाषा में किया गया आग्रह जयन्त टाल नहीं सका। वह फिर कुर्सी पर बैठ गया और नरेश बाबू के लौट आने की आशा में चाय की प्रतीक्षा करने लगा।

नरेश बाबू के आने से पहले उनकी श्रीमती जी ट्रे में चाय और खाने के लिए मिठाइयां लेकर आ गईं। वह भरे-पूरे बदन की महिला थीं। विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थी लेकिन अत्यन्त सहज और सरल स्वभाव की थी। उस घर में उन्हें महज किसी खास अवसर पर ही देखा जा सकता था। बाकी तो वह अपने बड़े भाई के परिवार के साथ रहकर बच्चों की पढ़ाई-लिखाई देखती थी। नरेश बाबू का उनके प्रति कोई लगाव नहीं था। सम्बन्धियों के लौट जाने पर वह भी दो-चार दिन में ही वापस चले जाने वाली थीं।

उन्होंने जयन्त को देखकर अपनी साड़ी का आँचल माथे पर खींच लिया और किंचित मुस्कराकर बोली, "तुम तो लाला जी सूख के पतली सुई जैसे हो गए। अब कुछ लगके दवा-दारू करो।" फिर अपनी सास से पूछने लगी, "आपकी चिलम भर लाऊं, कंडा सिलग गया है।"

"ना अबी ना। थोई देर में देखी जायगी। खाने-पीने के चक्कड़ में मत परियो—बस खिचरी बन जावैगी। हरीस-नरेस तो ऐसो ही थोरो-भौत खावंगे।" दादी जी ने अपनी बात कहकर जयन्त से कहा, "लल्ला, तू भी नेक मनक मट्ठी खा लीजो।"

जयन्त ने दादी जी के ममत्व को भावुकता से ग्रहण करके कहा, "नहीं अम्मा जी, मेरे खाने की चिन्ता मत कीजिये—मैं तो शाम को खाना खाता ही नहीं हूं। वैसे भी इच्छा नहीं होती।"

"इच्छा कहां ते होयगी—बेमार का थोरो-भहोत रह्यो है—अस्पताल में दाखिल रहके तो देही में बचे ही कहा है? बस रात-दिन जान सोखने वाली गोरी-अंजैक्शन। हमाये जमाने में हकीमन की दवा ते कैसो भी भारी मरज चार दिना में चले जाये करो ओ—अब नेक बेमार परे—बस चलो असपताल। फेर खाने-पीने को रह्यो ही कहा है—कोटोजम डालडा। मरी-मरी साग-भाजी। घी-दूध को कहीं नाम भी बचो दिखाई परे अ?"

आज के जमाने पर दादी जी न जाने कितनी देर तक लानतें भेजती रहतीं—वह तो उन्हें जल्दी ही शकुन की याद ने आ घेरा। आंखों में आंसू भरकर बोलीं, "लल्ला, छोरी (शकुन) के जाने ते घर सूनो है गयो। मोय तो काटने कू आवेगो। अबी तो दो-चार दिन मानस दीखे हैं।" फिर वह धीमी आवाज में, इधर-उधर देखकर बोलीं, "जैन्ती कुरसी नेक मेये ढिग खेंच ला।"

जयन्त ने अपनी कुर्सी दादी जी के नजदीक खींच ली और धड़कते दिल से उनकी बातें सुनने को तैयार हो गया। वह अनुमान नहीं लगा पाया कि वह उसे किस रहस्यमयी स्थिति में शामिल करना चाहती हैं।

दादी जी ने अपनी आंखों से चश्मा उतारकर धोती के पल्लू से साफ किया और बहुत धीमे स्वर में कहने लगीं, "पतो ना चले या हमाये नरेस की अकल पे का पत्थर पर गये अं? और अब तुम देखो—या की अच्छी-भली बऊ अ। बरी बारी (शकुन की मां) तो भरी ज्वानी में गई। हरीस की उमर वा बखत पच्चीसेक बरस की रई होयगी। सबन ने खूब समझायो—रिस्ते वारे ने हमाये दुआर पे धन्नो (धरना) ई दे दियो—पर वाने काई की आई ना करी—जिद्दी हरीस जनम को अ—बोलो, अम्मा अब मैं सादी ब्याव के चक्कड़ में तो पर ना सकूं तुम लाख कहो चाहे हजार कहो। रिस्तेदारन ने खूब पांव उखारे—पर वाने काई की ना सुनी। अब या नरेस को तो तुम अपनी आंखन ते ही देख रये हो। अपनो टीन को झोंपरो (झोंपड़ी) बी माने घरते अलग कल्लीयो अ। रोटी-पानी बी वई पोंचानो

परे। कछु अच्छी बात अ याये के बऊ-बच्चा कच्चान कू लेके अपने भइया के दुआर पे परी हैगी। अरे नेक तो सोचो भले मानसो—हमारे दरवज्जे पे बीस-पचास आदमी खानो खाते अ और हमाये ई बच्चा बनायन जैसे घत्ते बाहर परे अं। दिन-दिन नरेस के बालक सियाने होवत जावे हैं—कहा सोचगे वरे हैके?" इतना कहकर वह कुछ क्षण ठहरी और उन्होंने अपने स्थान से उठते हुए कहा—"जाइयो मत लल्ला, मैं अबई आवत ऊ।"

लेकिन वह मकान के अंदर नहीं गईं। दरवाजे तक गईं और किवाड़ों को उढ़काकर लौट आईं। शायद वह अपनी बात की भनक नरेश बाबू की पत्नी के कानों में नहीं पड़ने देना चाहती थीं। उनकी इस सतर्कता से जयन्त बहुत प्रभावित हुआ और उनकी बातें सुनने के लिए धैर्य से बैठा रहा। उन्होंने पुनः अपने स्थान पर बैठकर फुसफुसाहट में बात शुरू की, "तुमते मैं एकई बात की अरज करू हू बेटा—तुमारो कहनो नरेस टाल ना सके। याये तुमई समझावो। अब तुम देखो, मेई अकेली जान—मोय नजर ते ठीक दिखाई परे ना अ—इतनी लम्बी-चौरी हवेली में मोपे रहयो जायगो। अरे भैया, छोरी के हात पीरे है गए—घर में बाल-बच्चन की रौनक होय करे अ। जब तिहारे चार बच्चा अ, तो उन्हें अपने ढिग लाय के रखो। आखर उनके सादी-ब्याव, पढ़ाई-लिखाई तो देखनी ई चइये। अब ऐंठ में का धरो अ? नरेश चालीस ते ऊपर है गए अ—कोई दूध पीते बालक नांय। जग हंसाई है रई अ हम लोगन की। तुम वाय बैठाय के धीरज ते या बात अ समझाय देओ—स्यात तिहारी बात मान जाय, बाकी बाने काई की कबी सुनी ना हती।"

जयन्त को लगा दादी जी की बात बहुत वाजिब और समयानुकूल है। नरेश बाबू, जो सारी दुनिया के लिए इतने उदार और खुले हुए हैं, उनका अपने परिवार के साथ यह दुर्व्यवहार एकदम समझ में आने वाला नहीं है। जिस घर में आधी रात आने वाले मेहमान को भी खाना बनाकर खिलाया जाता रहा है वहां उसी घर के बच्चे उपेक्षित होकर कहीं बाहर संबंधियों के यहां उम्र गुजारते रहें—इससे बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है? जयन्त ने कुछ देर तक सोचा और दादी जी को आश्वासन देते हुए कहने लगा, "आपकी बात एकदम सही है। घर की मर्यादा और बच्चों के

भविष्य की नजर से देखें तो नरेश जी को बच्चों को यहीं ले आना चाहिए। मैं उनसे बातें करूंगा।" फिर वह एक क्षण सोचकर बोला, "मगर आप भाभी जी (नरेश की पत्नी) को वापस ही क्यों जाने देती हैं। रही बच्चों की बात—आप उन्हें यहां बुला लेंगी तो उन्हें घर से कौन निकाल देगा? इस घर पर तो उनका पूरा अधिकार है। हरीश जी के सामने तो नरेश वैसे भी कुछ नहीं बोलते। इसके अलावा एक अच्छा अवसर यह भी है कि शकुन की शादी पर बच्चे परीक्षाओं के कारण नहीं आ पाए थे। अब जैसे ही उनके इम्तिहान खत्म हों—थोड़े दिनों के लिए घूमने-फिरने के लिए ही यहां बुला लीजिए। बाद में स्कूल खुलने पर उन सबको यहीं दाखिल करा दिया जायगा।"

दादी जी की आंखों में एक चमक उभरी पर अगले क्षण ही वह बुझ गई। वह शांत स्वर में बोलीं, "तुम कहो तो सच्ची बात, पर नरेस ते मोय डर लगे अ—कहीं फसाद ना खरो है जाय?"

"झगड़ा-फसाद सब देखा जाएगा बाद में। भाभी जी जरा हिम्मत करें तो नरेश जी कुछ नहीं कर पाएंगे। आखिर वह नरेश जी की विवाहिता पत्नी हैं—वह अपने वाजिब हक को छोड़कर क्यों दूर-दूर भागती फिरती हैं? आदमी को अपना अधिकार पाने की जद्दोजहद तो करनी ही चाहिए कम-से-कम।" जयन्त ने अपनी बात पर जोर देकर कहा, "मैं इस तरफ सब कुछ देख लूंगा—आप बच्चों को छुट्टियों में बुलाने के लिए भाभी जी से एक खत डलवाइए। यही नहीं हरीश बाबू से भी बच्चों को यहां आने के लिए एक पत्र लिखवाइए।"

"ठीक अ तो—कलई खत लिखवाऊंगी बऊ ते। हरीस तो अपने आपई कह रह्यो के खत डार के बालकन को बुलावे के लए टेलीफून करें। एक हफ्ता में तो छोरी (शकुन) कू वी वापस लावनो है वाकी सुसराल ते।"

जयन्त ने उठते हुए कहा, "बस बहुत ही ठीक मौका है—आप नरेश बाबू के बच्चों को तत्काल बुलवा लीजिए। शकुन को लाने के लिए जो भी जाए वह अपने साथ एक दो बच्चों को भी लेता जाय।"

जयन्त की बात सुनकर दादी जी के झुर्रियों-भरे चेहरे पर स्वस्ति का

भाव नज़र आया और वह बोली—"तो फेर मैं कल हरीस तें टेलीफून करवाय देऊं ऊं।"

"ठीक है करवा दीजिए," कहकर जयन्त चल दिया। उसे रोके जाने की शंका थी सो बोला, "माताजी, मैं एक बार फिर आ जाऊंगा। इस वक्त तो नरेश बाबू घर में हैं नहीं—हो सकता है वह कहीं फंस गए हों और रात को ही लौटें।"

"हां जे बात तो तुम ठीकई कहो ओ। ब्याव निपटा के यहां-वहां को समान देखनो परे है—फेर वा होटल (होस्टल) के समान कू बी तो संभर-वानो है जां बरात ठहरी हती। बिजरी वारेन को हिसाव-किताब बी करनो अ वाकू—शर्मवाने वारेन कू वी कह रयो के अपने रुपइया-पइसा ले जावो।" फिर जयन्त को आग्रह से समझाते हुए बोली, "घंटा-भर में आ जरूर जइयो—नरेस तिहारो इन्तजार करेगो। तिहारे विना ऊ खानो भी न खावेगो।"

जयन्त ने फिर लौटकर आने की हामी भरी और कमरे से बाहर निकल गया। बाहर जाकर उसने देखा रात हो गई थी और सहन में बिछी हुई चारपाइयों पर पड़े लोग ऊंघने से लगे थे। कुल मिलाकर वह लम्बा-चौड़ा घर एकदम निष्प्राण-सा हो गया था।

जयन्त तेज़ी से चलकर गली में पहुंच गया। गली में भी सूनापन व्याप्त था। जयन्त को पिछली शाम की याद आई जब शकुन की बारात बिदा हो रही थी तो इस गली में अच्छी-खासी भीड़ थी। जहां से जुलूस निकल जाता है वह जगह बाद में बहुत खाली, सूनी और मनहूस लगने लगती है।

थोड़ी देर चलने पर ही जयन्त के पांव शिथिल पड़ गए और उसकी चाल धीमी हो गई। उसे इतने लम्बे वर्षों में कभी भी यह शहर इतना बेगाना, क्रूर और निराशाजनक नहीं लगा था जितना कि इस क्षण लग रहा था। उसने सोचा, क्या एक आदमी के चले जाने से ही एक लाख की आबादी वाला शहर इतना खाली हो जाता है? उसे अपने सोच पर हुई और उसके अंतर्मन में बैठे किसी ने कहा, "मूर्ख! लोग शहर रहते, वे हमारे अपने जीवन में होते हैं—उनके चले जाने से शहर दुनिया को कोई फर्क नहीं पड़ता है—अंतर केवल हमें पड़ता है।"

पांच

जयन्त को आशा थी कि शकुन शादी के बाद जल्दी ही लौटकर आ जाएगी। उसके मन में यह सोचकर भयंकर उथल-पुथल मची हुई थी कि वह शकुन से किस तरह मिलेगा। क्या शकुन अब भी वैसी ही होगी जैसी कि वह हमेशा से थी या कि जिस रूप में जयन्त उसे जानता था? कभी वह कल्पना करता कि शकुन में कोई परिवर्तन नहीं आया होगा। दस-बीस दिन में क्या आदमी बदल जाता है? लेकिन उसका तर्क कहता कि आदमी का भीतरी स्वरूप बाहरी परिस्थितियों की अवहेलना नहीं कर सकता—जो हम पर बाहर से गुजरता है वह हमारी शक्ल-सूरत को चाहे हूबहू पहले जैसा ही अक्षुण्ण रहने दे पर फिर भी हम अनायास ही संपूर्ण रूप से बदल जाते हैं।

दरअसल अब जयन्त शकुन के सामने जाने से घबराता था। शकुन को उसने जिस बिंदु पर छोड़ा था वहां वह उसे लेकर असम्पृक्त और निर्विकार नहीं था। उसे शकुन पर अपना स्वत्व स्थापित दीख पड़ता था, बाह्य और अंतर से शकुन पर उसे अपना दावा महसूस होता था पर इतनी ही देर में हकीकत पूरी तरह बदल चुकी थी—पूरा संसार बदल चुका था और जयन्त उस बदली हुई दुनिया में प्रवेश करने से घबराता था।

यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि शकुन को गए हुए दूसरा हफ्ता भी निकल गया और उसके लौटने की कोई निश्चित सूचना नहीं मिली। वह अपने पति के साथ आबू गई थी और वहां से वे लोग बम्बई होते हुए गोवा चले गए थे। इसी दौरान जम्मू से जयन्त के बड़े भाई के दो पत्र आ चुके थे कि अपनी भाभी और ज्योति का आरक्षण करवाकर उन्हें गाड़ी पर चढ़ा दो और मुमकिन हो तो थोड़े वक्त के लिए तुम भी जम्मू आ जाओ। जयन्त के बड़े भाई ने उसे यह सलाह भी दी थी कि तुम काफी बीमार रह चुके हो। वहां बेपनाह गर्मी पड़ रही है यहां आ जाओगे तो आबोहवा बदल जाने से सेहत बहुत जल्दी सुधर जाएगी। कश्मीर घूम आओगे—थोड़ा समय निकालकर मैं भी तुम लोगों के साथ चला चलूंगा।

जयन्त अपने चारों तरफ के निराशाजनक वातावरण से इतना ज्यादा

ऊब चुका था कि वह स्वयं भी कुछ वक्त के लिए शहर छोड़कर कहीं चले जाना चाहता था। इसके अलावा उसके मन में शकुन से मिलने की जो झिझक थी उससे भी बच निकलने का रास्ता था।

जयन्त ने तीन बर्थ रिजर्व करा लीं और ज्योति तथा भाभी को चलने के लिए तैयार हो जाने की सूचना दे दी। भाभी यह जानकर बहुत प्रसन्न हुईं कि जयन्त भी उनके साथ चल रहा है।

जब उसने स्लीपर में पहुंचकर बर्थ देखीं तो पाया कि तीनों बर्थ एक ही स्थान पर आरक्षित नहीं हो पाई हैं। एक तरफ दो ही बर्थ मिली थीं—एक बर्थ कुछ सीटें छोड़ने के बाद मिली थी। गाड़ी चूंकि बेतरह भरी हुई थी इसलिए बर्थ बदलने का कोई विकल्प सामने नहीं था। उसने भाभी, ज्योति और बबलू को एक साथ दो सीटों पर कर दिया और स्वयं आगे वाली बर्थ ले ली।

गाड़ी चलने से पहले उसे ख्याल आया कि रास्ते में एक सुराही काफी नहीं होगी। चार प्राणियों को जानलेवा गर्मी में काफी पानी चाहिए। सो वह गाड़ी से उतरकर प्लेटफार्म पर गया और एक सुराही खरीद लाया।

जब गाड़ी ने प्लेटफार्म छोड़ा तो डिब्बे में बीच के स्टेशनों पर जाने वाली न जाने कितनी सवारियां अनाप-शनाप चढ़ती चली गईं। आरक्षण बावजूद गाड़ी में दम घुट जाने वाली स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

भाभी, ज्योति और बबलू को उनकी सीटों पर मय बिस्तर-बोरिये के स्थापित करके जयन्त अपनी सीट पर गया तो उस पर तीन-चार लोग आसीन थे जिन्होंने उसे बतलाया कि वह दो-तीन घंटे के भीतर बर्थ खाली कर देंगे। जयन्त भी फंस-फंसाकर उनके बीच में ही घुस गया।

दो घंटे बीत जाने के बाद गाड़ी का वातावरण थोड़ा बदला। भीड़ इधर-उधर समा गई और हवा में कुछ ताजगी भी भर चली। जिन लोगों ने जयन्त की बर्थ पर डेरा जमाया था वह भी अपने स्थानों से उठते दीख पड़े।

जयन्त ने अपने लिए एक चादर और तकिया रख लिया था जिसे उसने बर्थ पर रखा तथा भाभी और ज्योति का हाल-चाल देखने चला गया। वह लोग अपनी बर्थ पर आराम से थे। बबलू ज्योति की सीट पर सो गया था।

भाभी एक पत्रिका पढ़ रही थीं और ज्योति के हाथ में एक उपन्यास था।

उसने अपना सूटकेस खोलकर कुछ पत्रिकाएं और पुस्तकें निकालीं। सुराही और किताबें लेकर अपनी वर्थ की ओर जाते हुए उसने ज्योति से कहा कि वह लोग निश्चिन्त होकर सोयें—वह बराबर जागता रहेगा और बीच-बीच में उन्हें आकर देखता रहेगा।

जिस वर्थ पर जयन्त ने अपना विस्तर जमाया उसके सामने वाली वर्थ पर एक युवती और पांचेक साल का एक बच्चा बैठे थे। युवती वायल की सफेद साड़ी और ब्लाउज़ पहने थी और उसकी कलाइयां सूनी थीं। सिर पर घने काले बाल थे पर उनमें तेल की चिकनाई के बजाय रूखापन था। लड़की की देहयष्टि में कोमलता और भरपूर चिकनापन था। उसके सांवले स्वरूप में एक विशेष लावण्य था जो देखने वाले को हठात् अपनी ओर आकर्षित करता था। युवती की उम्र बीस-इक्कीस साल से ज्यादा नहीं थी पर उसके चेहरे पर गहरी गम्भीरता का भाव फैला हुआ था। वह अपने में खोई हुई और बाकी दुनिया से बेखबर लग रही थी। उसके पास ही वर्थ पर कई पत्रिकाएं और आन्द्रे ज़ीद का विश्वविख्यात उपन्यास स्ट्रेट इज दा गेट (संकीर्ण पथ) पड़ा हुआ था। लड़की के ऊपर वाली वर्थ पर एक प्रौढ़ महिला लेटी हुई थी। वह महिला मुंह आगे बढ़ाकर लड़की से गुजराती में कुछ कह रही थी जिसका उत्तर युवती के बजाय बच्चा दे रहा था, शायद बात बच्चे से ही संबंधित थी।

जिस बर्थ पर जयन्त जाकर बैठा उस पर दो और व्यक्ति बैठे थे जिनकी सीटें ऊपर की तरफ थीं। चूंकि अभी रात ज्यादा नहीं बीती थी इसलिए वह दोनों जयन्त की वर्थ पर बैठे थे। उनकी सीटें अभी खाली थीं। सबसे ऊपर वाली वर्थ पर एक अधखुला विस्तर और दीगर सामान रखा था।

धीरे-धीरे भीड़ ट्रेन में इधर-उधर छितरा गई और सीटों के बीच की खाली जगह में चादर और तौलिए बिछाकर लोग पड़ रहे। जयन्त के साथ बैठे अधेड़ उम्र के सज्जन और दूसरी सवारी ने भी अपनी सीटें घेर लीं।

जयन्त अपनी वर्थ पर लेट गया और उसने भी एक पुस्तक खोल ली,

लेकिन उसका मन पढ़ने में जरा भी नहीं लगा। उसने सामने की बर्थ पर आड़ी-तिरछी होकर लेटी युवती को कनखियों से देखा। एक तरफ बच्चा पड़ा सो रहा था और लड़की पांव सिकोड़कर सीट पर किसी प्रकार स्वयं को स्थापित करने की कोशिश कर रही थी। उसके हाथ में शॉद का उपन्यास था जिसे पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी वह आंखें बन्द करके कुछ सोचने लगती थी। जयन्त को वह लड़की जबरदस्त पढ़ाकू और मनस्वी लगी। उसके सांवले-सलोने चेहरे पर बड़ी-बड़ी गहरी काली आंखें और लम्बी बरौनियां अनचाहे भी जयन्त के मन में कोई ऐसा भाव जगा रही थीं जिससे वह स्वयं भी अपरिचित था।

जयन्त ने अपनी पुस्तक बन्द करके सिरहाने रख दी और सीट से उठकर भाभी और ज्योति की खैर-खबर लेने चल दिया। फर्श पर पांव पड़ते ही उसने देखा कि सीटों के नीचे पानी फैल गया है; शायद किसी पैसेंजर की सुराही फूट गई थी और उसकी पेंदी से पानी रिसने लगा था। पानी से अपने पांव बचाता हुआ वह दूसरी तरफ निकल गया।

दो-तीन सीटों के उस तरफ ज्योति और उसकी भाभी अपनी-अपनी बर्थ पर लेटी हुई थीं। भाभी तो सो गई थीं मगर ज्योति अभी जाग रही थी और उसका भतीजा बबलू उसके पास नींद में बेसुध सोया पड़ा था। जयन्त ने ज्योति से पूछा, 'क्या तुम्हें नींद नहीं आ रही है?"

"अभी तो नहीं आ रही है, क्या बज गया होगा?" ज्योति ने पूछा तो उसने अनुमान से समय बतला दिया और यह कहकर लौटने लगा कि "अगर कोई जरूरत पड़े तो मुझे बता देना—मैं अभी सो नहीं रहा हूं।"

ज्योति ने धीरे से सिर हिला दिया और पूछने लगी, "आपने कुछ खाया क्यों नहीं—खाना रखा है, टेसन से जाकर उधर ही खा लेते—वेकार में खराब हो जाएगा सुबह तक।"

"अब खाने का कोई वक्त है? सुबह ही देखा जाएगा—रात को मुझे तो बस प्यास ही प्यास लगती है, सो मेरे पास पूरी भरी हुई सुराही है।"

ज्योति उठने की कोशिश करते हुए बोली, "बैठ जाओ यहीं अगर नींद नहीं आ रही है तो।"

"नहीं-नहीं, तुम लोग अब चैन से सोओ, मैं चलता हूं।" कहकर

अपनी बर्थ की दिशा में लौट पड़ा।

अपनी बर्थ पर लेटकर जयन्त ने आखें बन्द कर लीं और सोने की कोशिश करने लगा, पर यकायक उसे शकुन का खयाल आ गया। शादी के बाद शकुन अभी तक भी नहीं लौटी थी। हालांकि उसके भीतर शकुन ही समाई हुई थी और वह उसके लौटने की एकान्त प्रतीक्षा करता रहा था मगर कहीं यह भी चाहता था कि शकुन जल्दी से न लौटे। पता नहीं लौटने के बाद वह कैसी हो गई हो और जब वह उसके सामने आए तो क्या व्यवहार करे। कई बार हम अपनी बनाई हुई मूर्तियों को लेकर इतने आग्रहशील हो उठते हैं कि उनका बदला हुआ स्वरूप हमें गहरा धक्का पहुंचाता है।

शकुन को लेकर जयन्त गहरे विचारों में डूब गया, उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि वह इस समय कहां है। सहसा उसकी तन्द्रा किसी कोमल नारी-कण्ठ की मनुहार से खंडित हो गई। उसने आंखें खोलकर देखा तो पाया कि सामने वाली बर्थ पर लेटी युवती दो सीटों के बीच खड़ी उससे कुछ पूछ रही थी और सीट पर बैठा बच्चा रो रहा था। जयन्त हड़बड़ाकर उठा और ऊपर वाली शायिका के पटरे से उसका सिर टकरा गया। उसने लड़की की ओर देखा तो वह पूछ रही थी, "क्या आपकी सुराही में थोड़ा पानी होगा? हम लोगों ने स्टेशन से जो सुराही ली थी, पता नहीं वह कैसे फूट गई—सारा पानी निकल गया। भाई को प्यास लगी है और वह रो रहा है।"

"अरे! तो इसमें क्या बात हुई—फूट जाने दीजिए सुराही। आप शौक से पानी पिला देतीं—भला पूछने की भी जरूरत होती है प्यासे को पानी पिलाने के लिए।"

युवती उपकृत होकर बोली, "धन्यवाद, मैंने सोचा कहीं पानी आपके लिए कम न पड़ जाय। गर्मी है—फिर हर स्टेशन पर पानी मिलता भी तो नहीं है।"

"आप इस सबकी चिंता छोड़कर पहले बच्चे को पानी दीजिए। पानी का इतना अकाल अभी नहीं पड़ा है। आगे जालन्धर के स्टेशन पर मैं सुराही फिर से भर लूंगा। इसके अलावा उधर एक सुराही और भरी रखी है—

ज़रूरत होगी तो उसका भी इस्तेमाल कर लिया जाएगा।"

लड़की ने अपनी सुराही पर ढके प्लास्टिक के गिलास को उठाया और जयन्त की सुराही से गिलास भरकर अपने भाई को पानी पिला दिया। इसके बाद उसने जयन्त से पूछा, "आप को प्यास लगी हो तो पानी दूं?"

जयन्त ने हिचकोले खाती ट्रेन के नींद में डूबे सहयात्रियों पर एक नज़र डाली। इस समय सब लोग गहरी नींद में डूबे थे। बस वह और एक अपरिचित युवती आमने-सामने बैठे थे। लड़की का भाई भी पानी पीकर फिर से सो गया था। जयन्त ने लड़की के शब्दों को अपने मस्तिष्क में बजते हुए महसूस किया। लड़की के शब्दों में कहीं कोई गहरा श्लेष अथवा वह अर्थ नहीं था लेकिन 'आपको प्यास लगी हो तो पानी दूं' में कुछ ऐसा ज़रूर था जो जयन्त को भीतर तक ध्वनिमय कर गया। वह एक क्षण चौंका और उसकी दृष्टि निमिष-भर के लिए युवती के चेहरे पर जा ठहरी। पीठ पर लहराते शुष्क बालों का ढेर, आंखों में गुलाबी अलसायापन—सांवला मसृण सुता हुआ चेहरा और पूरे व्यक्तित्व में आभिजात्य गाम्भीर्य, सारा कुछ ऐसा था जिसे नकारना असम्भव था। जयन्त ने हंसने की चेष्टा करके कहा, "प्यास तो मुझे बेपनाह है, मगर छोड़िए आप क्यों कष्ट उठाती हैं।"

"नहीं-नहीं, इसमें कष्ट की क्या बात है।" कहते हुए युवती ने जयन्त की सुराही पर ढके गिलास को उठाया और पानी भरकर जयन्त की ओर बढ़ा दिया। जयन्त ने धन्यवाद देकर पानी का गिलास पकड़ लिया। एक घूंट पानी पीकर उसने गिलास हाथ में लिए-लिए ही युवती से पूछा, "अगर आप बुरा न मानें तो क्या मैं जान सकता हूं आप लोग कहां जा रहे हैं?"

इस बार युवती हल्के से मुस्कराई और बोली—"लगता है आप किसी के बुरे मानने की बहुत परवाह करते हैं। मैं बिना बुरा माने ही बतलाए देती हूं कि हम लोग अंत तक मानो जहां तक यह ट्रेन जाएगी वहीं तक जाएंगे।"

जयन्त ने पानी की दूसरी घूंट लेकर पूछा "यानी जम्मू तक? चलिए फिर तो आपके साथ अन्त तक ही साथ बना रहेगा।"

जयन्त की बात सुनकर युवती एकाएक गम्भीर हो उठी और उदासी के स्वर में बोली, "अंत तक साथ बने रहने की बात मरीचिका के समान

है ! अन्त तक किसका साथ बना रहता है ?"

जयन्त ने पश्चात्ताप प्रकट किया, "क्षमा करें ! मेरा वैसा कोई गंभीर अभिप्राय नहीं था। मैं वैसे ही सहज रूप में यह बात कह गया था—आपको मेरी बात से अनजाने में कोई चोट पहुंची है—कृपया मुझे क्षमा करें।"

"नहीं-नहीं, इसमें क्षमा की कोई बात नहीं है।" फिर युवती ने प्रसंग बदलते हुए पूछा, "क्या आपके साथ और भी कुछ लोग हैं ?"

"जी हां, मेरी छोटी बहन, भाभी और भतीजा मेरे साथ हैं। मेरे बड़े भाई जम्मू की छावनी में हैं। मैं अपनी भाभी को वहीं छोड़ने जा रहा हूं।" इसके बाद उसने बतलाया कि सब लोगों का आरक्षण एक ही स्थान पर नहीं हो पाया, क्योंकि आरक्षण दो बार में सम्भव हो सका था इसलिए सब सीटें एक ही क्रम में नहीं मिल पाईं।

लड़की उत्सुकता से जयन्त की बात सुन रही थी और उसके चेहरे पर क्षण-भर पहले एकाएक घिर आए उदासी के बादल भी छंट गए थे। जब जयन्त ने अपनी बात समाप्त की तो लड़की ने पूछा, "क्या आप अपनी भाभीजी को जम्मू छोड़कर तत्काल लौट आएंगे ?"

जयन्त एक क्षण सोचकर बोला, "तत्काल तो शायद ही लौट सकूं क्योंकि भाई के पास पहुंचने के बाद पूरा घर ही एक तरह से वहां पहुंच जाएगा। हमारे परिवार में कुल जमा छह प्राणी हैं, दो आलरेडी जम्मू में हैं और तीन मेरे साथ जा रहे हैं। इसके अलावा मैदान की यह मारने वाली गर्मी। हो सकता है सब लोग श्रीनगर या पहलगाम ही चले जाएं। वहां टूरिस्ट बंगलों में ठहरने की व्यवस्था में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

"आपके बड़े भाई तो वहां अकेले ही होंगे।" युवती ने जिज्ञासा प्रकट की तो ज़यन्त बोला, "अकेले ही समझिए मगर अब उनकी बेटी इम्तिहान से फारिग होकर लौट आई होगी और घर में कम-से-कम दो प्राणी तो ज़रूर ही होंगे।"

जालन्धर स्टेशन पर गाड़ी ठहरी तो स्टेशन पर खासी गहमागहमी दिखाई पड़ने लगी। चाय-चाय की पुकार सुनकर अधिकांश यात्री जाग उठे। ट्रेन के डिब्बे में भी आवाजाही की अफरा-तफरी शुरू हो गई।

जयन्त अपनी सीट से उठकर खड़ा हो गया और भाभी बच्चों की ओर जाते हुए युवती से पूछ बैठा "आपकी चाय पीने की इच्छा हो तो कहिए—आपके लिए एक प्याला चाय लाने में मुझे दिली खुशी हासिल होगी।"

युवती ने अपनी सीट से उठने की कोशिश की मगर उसके ऊपर की शायिका से उसका सिर टकरा गया और वह फिर अपने स्थान पर लेटते हुए बोली, "नहीं-नहीं, तकलीफ न करें, मैं तो वैसे भी चाय नहीं पीती हूं—फिर अभी तो रात भी इतनी ज्यादा बाकी है कि चाय पीने का सवाल ही नहीं उठता है।"

जयन्त ने आश्चर्य व्यक्त किया, "अरे, आप चाय बिल्कुल नहीं पीतीं और वह भी इस जमाने में! आजकल तो छोटे-छोटे बच्चे तक चाय के बगैर नहीं रह सकते।"

जयन्त की बात सुनकर युवती उदासी से मुस्करा कर बोली—"बहुत-सी चीजों के बिना रहना पड़ता है आदमी को—जिन चीजों को एकदम जरूरी समझता है वही मिलना बंद हो जाए तो भी गुजारा करना पड़ता है। आदमी क्या और पशु क्या, परिस्थितियां उसे अपने माफिक बना लेती हैं।"

लड़की ने गुजराती में अपने पिता को संबोधित करके कुछ कहा। शायद उसने अपनी सुराही फूटने की बात कही थी, क्योंकि आदमी ने हिंदी में कहा, "मैं इस स्टेशन से दूसरी सुराही लेकर आता हूं।"

जयन्त बोला, "आप सुराही लाने की तकलीफ क्यों करते हैं—मेरे पास दो सुराहियां हैं—आप इत्मीनान से पानी पीजिए—फिर सफर ही कितना है जो फिजूल में सुराही खोजने जाएंगे।"

उस व्यक्ति ने अपनी गर्दन हिलाकर जयन्त से सहमति व्यक्त की और युवती ने जयन्त को गिलास देकर कहा, "आप अपने लोगों को देख लीजिए, शायद उधर किसी चीज़ की ज़रूरत हो।"

"हां-हां, मैं देख लेता हूं" कहकर जयन्त ने सुराही से पानी का गिलास भरा और लड़की के पिता की ओर बढ़ा दिया। उन्होंने पानी पी लिया तो जयन्त ने उनके हाथ से गिलास लेकर लड़की को वापस दे दिया। इसके बाद वह ज्योति और भाभी की खैर-खबर लेने चला गया।

उसने उधर जाकर देखा--सब लोग आराम से सोए पड़े थे। वह उधर से आश्वस्त होकर डिब्बे से बाहर चला गया। गाड़ी स्टेशन पर कई मिनट ठहरती थी। ट्रेन की बहुत-सी सवारियां प्लेटफार्म पर उतरी खड़ी थीं और चाय वगैरह पी रही थीं। टी-स्टाल पर जाकर जयन्त ने भी चाय पी और नमकीन बिस्कुट का एक पैकेट खरीदकर डिब्बे में वापस लौट आया।

बिस्कुट का पैकेट युवती की ओर बढ़ाते हुए जयन्त बोला, "छोटे भैया जब जागेंगे तो उन्हें ज़रूर भूख लगेगी। बच्चे और बूढ़े कभी नहीं जानते कि उन्हें कब भूख लग पड़ेगी।"

जयन्त की बात पर युवती के पिता हंस पड़े और बोले, "लगता है आप अन्तर्यामी हैं। आपकी उम्र तो इतनी नहीं दीख पड़ती कि बूढ़ों और बच्चों के स्वभाव की इतनी सही मीमांसा कर सकें। क्या आप बूढ़ों और बच्चों के स्वभाव का अध्ययन कर रहे हैं?"

जयन्त हंसकर कहने लगा, "नहीं-नहीं, अध्ययन की कोई बात नहीं है। मैंने यों ही कह दिया था।"

फिर युवती के पिता सोये नहीं—वह जयन्त से बातें करने लगे। बातचीत के दौरान जयन्त को पता चला कि वह अहमदाबाद के रहने वाले

हैं—वहां उनका अपना छोटा-मोटा व्यवसाय है। उनकी पुत्री नैना का तीन वर्ष पूर्व विवाह हुआ था और जिस लड़के से नैना की शादी हुई थी वह एक दुर्घटना में साल-भर पहले मर गया था। अब वह थोड़ा समय निकालकर पत्नी और बच्चों के साथ देशाटन के लिए निकले हैं। पुरी, बनारस, प्रयाग होते हुए दिल्ली पहुंचे हैं और अब अमरनाथ जा रहे हैं।

जयन्त उनकी बात सुनकर उदास हो गया। नैना जैसी कमसिन युवती को इतनी जल्दी वैधव्य का मर्मान्तक आघात सहना पड़ा यह हृदयविदारक घटना थी। अब उसकी समझ में आ गया कि नैना सफेद वस्त्र क्यों पहने हुए थी और उसने किसी भी तरह का साज-शृंगार क्यों नहीं किया हुआ था। उसकी कलाइयां एकदम खाली थीं और मस्तक पर कैसा भी मांगलिक चिह्न नहीं था।

नैना के पिता से बातें करते-करते उसकी आंखें नैना की ओर उठ गईं। नैना करवट लेकर पड़ी हुई थी। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि वह नैना का चेहरा नहीं देख पाया। उस चेहरे पर आने वाले भाव उसे पीड़ा से झकझोरने वाले ही होंगे। नैना के वैधव्य का प्रसंग इतना दुखद था कि फिर नैना के पिता से वह कोई भी बात नहीं कर सका।

कई मिनट की चुप्पी के बाद नैना के पिता बोले, "आप तो कालिज-यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले विद्यार्थी मालूम होते हैं—इधर कहां जा रहे हैं? क्या कश्मीर सैर-सपाटे के लिए जा रहे हैं?"

जयन्त बोला, "नहीं-नहीं, सैर सपाटे का मेरा कोई इरादा नहीं है। मेरे भाई जम्मू छावनी में हैं। मेरी भाभी इधर आई थी, उन्हें और अपनी सिस्टर को भाई के पास पहुंचाने जा रहा हूं। मेरा कालिज जीवन समाप्त हो चुका है। सी० ए० करने के बाद मैं अपना स्वतंत्र काम शुरू कर रहा हूं।"

"अरे वाह! बड़ी जल्दी ही आपने अच्छा काम हाथ में ले लिया। इस काम में कैसी भी पराधीनता नहीं है—इसके अलावा जैसे-जैसे अनुभव बढ़ेगा, आप अधिक-से-अधिक सफल होते चले जाएंगे।"

उनके मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर जयन्त एकाएक संकुचित हो उठा और विनम्रता प्रकट करके बोला, "देखिए क्या होता है। सफलता

असफलता तो अंधेरे में छिपी हुई है।"

उन सज्जन का उत्साह मन्द नहीं पड़ा। वह कहने लगे, "अभी तो आप नवयुवक हैं—ऐसी निराशा-भरी बातें क्यों कहते हैं? परिश्रम का फल मीठा ही होता है।" फिर वह एक क्षण ठहरकर बोले, "मनुष्य की मेहनत कभी अकारथ नहीं होती—उसका मूल्य कभी-न-कभी अवश्य मिलता है।"

यद्यपि यह बात यहीं खत्म हो सकती थी, मगर नैना के वैधव्य का करुण प्रसंग उस वातावरण में अभी कहीं बचा रह गया था इसलिए जयन्त सिर्फ बातें करने की गरज से बोलने लगा। उसने नैना के पिता से कहा, "आप ऐसा कैसे कह सकते हैं कि मनुष्य का परिश्रम और प्रयास हमेशा सफल ही होता है? लोग कितनी मेहनत करते हैं, दिन-रात हाड़तोड़ परिश्रम करते हैं, मगर फिर भी रोटी का टुकड़ा नसीब नहीं होता। थोड़ी-सी चालाकी से काम लेकर आदमी परिश्रम करने वालों के मुकाबिले में अनेक गुना धन कमा लेता है और उन सब पर शासन करता है जो उसके अधीन रहकर पशुओं की तरह श्रम करते रहते हैं।"

नैना के पिता कुछ पल चुप रहे और फिर बोले, "आखिर प्रारब्ध भी कोई चीज़ है मेरे भाई! संसार में सारी चीज़ें हैं पर वह क्या सबको नसीब हो जाती हैं? बहुत-से उन्हें पाकर भी कहां रख पाते हैं? जो मनुष्य के भाग्य में होता है वही तो उसको मिलता है। इसीलिए गीता में निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश दिया है श्री कृष्णजी महाराज ने।"

"निष्काम कर्म की थ्योरी मेरी समझ में नहीं आती। मनुष्य को मन, बुद्धि, चेतना सभी कुछ ईश्वर का दिया हुआ है और उसी की प्रेरणा पाकर मनुष्य की चेतना सक्रिय होती है, तो फिर किसी भी प्रकार के सोच में मनुष्य का क्या चारा है? वह भला सोचे या बुरा सोचे इसके नियमन का उपाय ही क्या रह जाता है? शुद्ध सात्विक वृत्ति जितनी सहज है क्या दुष्ट बुद्धि भी उतनी ही सहज नहीं है?"

"वेदों में, निगम पुराणों में सूक्ष्म और एक-से-एक गंभीर तथ्य का विवरण मिलता है। यह सारे शास्त्र मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करते हैं। मनुष्य मन से चाहे तो उसे सत्प्रेरणा मिल सकती है और सांसारिक कष्टों से संघर्ष

करने की दृष्टि और शक्ति प्राप्त कर सकता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, विद्वान शास्त्रज्ञ इस संसार में हैं जो मनुष्य को कल्याण की ओर प्रवृत्त करते हैं।"

"आपकी बात से मैं पूर्ण सहमत हूं मगर यह पूछने की धृष्टता कर रहा हूं कि इन सारे शास्त्रों और विद्वानों के किए क्या हुआ है? क्या दुनिया का दुख-दारिद्र्य दूर हो गया? क्या मनुष्य अपने पड़ोसियों को प्रेम करना सीख गया—क्या शोषण और व्यर्थ के रक्तपात पर रोक लग गई? क्या साधारण मनुष्य को न्याय मिल गया। सारे संसार में द्वन्द्व, कलह, आपाधापी, छीना-झपटी हमेशा की तरह चालू है। धर्म, सम्प्रदाय और उनके बड़े-बड़े दावे अपनी जगह कायम हैं और शोषण और अन्याय उसी अंधी गति से मासूम लोगों को रौंदता चला जाता है।"

"यह मनुष्य की दुष्ट बुद्धि है—जिसका बिना संस्कार के परिष्कार होना असम्भव है।" नैना के पिता ने अनेक उदाहरण देकर बतलाया कि किस प्रकार प्रत्येक युग में दुष्ट, लम्पट और अन्यायी लोगों का बोलबाला रहा है और भगवान ने अवतार धारण करके दुष्ट-दलन किया है।"

जयन्त उनकी बात पर हँस पड़ा और बोला, "भगवान को लगता है फिजूल में सिरमारी करने का खास शौक है वर्ना क्या जरूरत है कि पहले दुष्ट, लम्पट और राक्षस वृत्ति के लोगों को पैदा करे और फिर उनका सफाया करने का अभियान चलाये। फालतू मेहनत से आदमी भी कतराता है तो क्या भगवान इतना मन्दबुद्धि है कि वह दुष्टों का दमन करने में सारा वक्त लगाता फिरे? बड़ा घपला नजर आता है इस भगवान के कार्य-क्रम में।"

"आपने सारी बातों को सतही ढंग से सिम्पलीफाई (साधारणीकरण) कर दिया जनाब। अगर गंभीरता से सोचेंगे तो कुछ हाथ लगेगा अन्यथा संशय और दुविधा में ही पड़े रहेंगे और मन में अशान्ति की आग ही जलती रहेगी।"

जयन्त कुछ कहना ही चाहता था कि अचानक उसकी दृष्टि नैना के चेहरे पर चली गई। उसने जयन्त की बातें सुनकर उसकी तरफ ही करवट ले ली थी और वह जयन्त और अपने पिता के बीच चलने वाले संवाद को

को बड़े ध्यान से सुन रही थी। एक क्षण के लिए नैना और जयन्त की दृष्टि परस्पर मिली और दोनों ने आंखें झुका लीं। जयन्त अपने आसपास के वातावरण के संबंध में क्षण-भर के लिए सब कुछ विस्मृत कर बैठा—उसे लगा कोई पैनी चीज उसके हृदय में पूरी तरह उतर गई है। पता नहीं उन आंखों में क्या था कि वह नैना के पिता से आगे बहस करना भूल गया और उसे लगा सारे वाद-विवाद से कुछ भी सारपूर्ण निकलने वाला नहीं है—कोई जीवित भावाकुल दृष्टि होती है जो आदमी के पूरे अस्तित्व में कोई स्वस्ति भर जाती है, और एक ऐसा आर्द्र स्पर्श मिल जाता है कि मन-प्राणों में निरन्तर जलने वाली अग्नि का शमन हो जाता है।

देर तक जयन्त न जाने क्या सोचता रहा। उसकी तन्द्रा तब टूटी जब उसने नैना के पिता को कहते सुना, "तो आप कुछ दिन जम्मू में रहेंगे या फौरन लौट आएंगे?"

जयन्त बोला, "रह भी सकता हूं—दो-चार दिन, यों मेरी ज़रूरत तो वहां कोई है नहीं। मेरे लिए वहां नया देखने को तो कुछ है नहीं—एक किला है उसे मैं कई बार देख चुका हूं।" फिर एकाएक उसे कुछ याद आया और वह नैना के पिता से बोला, "अगर अनुचित न समझें तो आपके सामने एक प्रस्ताव रखूं?"

नैना के पिता शालीनता से बोले, "अरे, इसमें संकोच की क्या बात है—कहिए न?"

जयन्त ने नैना के चेहरे को कनखियों से देखते हुए कहा, "आप एक-दो दिन जम्मू में हमारे गरीबखाने पर रुकिये। आसपास जो देखने-सुनने योग्य हो उसे देखिए। मेरे भाई अकसर कटड़े तक जाते रहते हैं—वह आपका आगे जाने का इंतज़ाम आसानी से कर देंगे। हो सकता है मेरी भाभी और बहन भी अमरनाथ की यात्रा आप लोगों के साथ ही कर आएं।"

नैना के पिता कुछ पल तक सोचते रहे और बोले, "इसमें आप लोगों को बहुत कष्ट होगा।"

"कष्ट? इसे कष्ट क्यों कहते हैं—क्या आपका संपर्क पाकर हम सब लोग आनन्द का अनुभव नहीं करेंगे? मेरी भाभी तो बल्कि बड़ी खुश

होंगी। भाई तो उन्हें कहीं जाने को उत्साहित ही नहीं करते हैं—इस बहाने वह भी घूम-फिर लेंगी। दफ्तर के सब जगह रेस्टहाउस हैं—बड़ी आसानी से रहने की व्यवस्था हो जाएगी। आप किसी संकोच में न पड़ें—बस ट्रेन से उतरकर सीधे हम लोगों के साथ चलें।"

नैना के पिता ऊहा-पोह में पड़कर बोले, "देखिए, बात तो आपकी बहुत माकूल है। आप जैसे सज्जनों का साथ बड़े भाग्य से मिलता है—नैना की माता जी जागेंगी तो उनसे सलाह करके ही कुछ तय होगा।"

इस सारे वार्तालाप के बीच नैना एकदम चुपचाप लेटी रही थी और वह जयन्त की दृष्टि से भरसक बचती रही थी, लेकिन जब उसके पिता ने उससे जयन्त के प्रस्ताव के बारे में राय ली तो वह जयन्त की आंखों को अनदेखा नहीं कर सकी।

जयन्त को लगा नैना उसके प्रस्ताव से अन्तर्द्वन्द्व में पड़ गई है और एकाएक कोई राय देने की स्थिति में नहीं है। शायद वह जयन्त के घर में जाकर ठहरने से झिझक रही है, पर जयन्त को ऐसा भी नहीं लगा कि वह उसका साथ नापसंद कर रही है। नैना के संबंध में वह सोचने से बचना चाहने लगा। वह अपने मन में दूसरी-दूसरी बातें लाने की कोशिश करने लगा, परन्तु सामने लेटी युवती उसके मस्तिष्क से बाहर निकलने के बजाय और भीतर तक पैठती चली गई।

जयन्त गहरे सोच में डूब गया। अनजाने में ही उसकी कल्पना उसे न जाने कहां से कहां भटकाकर शकुन के नजदीक ले गई। आंखें बंद किए वह शकुन को अपने सामने देखने लगा। नैना के चेहरे पर उसे शकुन का चेहरा उभरता दिखाई पड़ा और अलंकार-विहीन शकुन उसे बहुत उदास तथा विह्वल नजर आई। नैना की श्वेत सादी साड़ी में शकुन को देखकर वह सिहर उठा। तभी ट्रेन एक झटके के साथ ठहर गई और गाड़ी में सब तरफ शोर-सा मच गया। जयन्त की आंखें भी एकाएक खुल गईं और उसने चारों ओर देखा।

नैना के पिता चिंता के स्वर में बोले, "लगता है कोई एक्सीडेंट हो गया है। स्टेशन तो आसपास कोई नजर नहीं आ रहा है—फिर गाड़ी के इस तरह सहसा ठहर जाने की कोई वजह भी मालूम नहीं पड़ती है

जयन्त उनकी बात सुनकर अपने स्थान से उठा और दरवाजे की दिशा में बढ़ लिया।

डिब्बे के द्वार पर पहुंच कर उसने बाहर देखा—लोगों की भीड़ ट्रेन के इंजिन की तरफ भाग रही थी और तरह-तरह की आवाजें आ रही थीं। जयन्त गाड़ी से उतरकर नीचे आ गया और इंजिन की ओर लपकते एक आदमी से उसने पूछा, "क्या हुआ भाई साहब ?"

"कोई आदमी कट गया है।" एक क्षण ठहरकर वह बड़बड़ाया, "पता नहीं कैसे जाहिल लोग हैं—जिनको ट्रेन की आवाज तक सुनाई नहीं पड़ती और बेमौत मारे जाते हैं—भला पटरी पर चलने में भी कोई शान है ?"

जयन्त ने उसके साथ चलते हुए कहा, "हो सकता है आत्महत्या का मामला हो।"

"हां, हो सकता है, मगर यह भी तो देखिए अब ट्रेन तो घंटा-आधा-घंटा फालतू में अटकी पड़ी रहेगी।" यह कहकर उस रुष्ट आदमी ने पिच्च से एक ओर थूक दिया।

जयन्त ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। वह सोचने लगा, एक आदमी जीवन से तंग आकर न जाने किन परिस्थितियों में अपघात करता है और दूसरा आदमी उसके मरने के बारे में सोचने की तो बात ही क्या इस बात पर झुंझलाता है कि फालतू में ट्रेन लेट हो रही है और उसे जहां जाना है वहां पहुंचने में व्यर्थ विलम्ब हो जाएगा।

उस आदमी के साथ चलते हुए जयन्त गाड़ी के इंजिन के करीब पहुंच गया। इंजिन के आगे एक भीड़ लगी हुई थी और इंजिन से थोड़ा आगे की तरफ खून में लथपथ एक नौजवान युवती की लाश पड़ी थी। दोनों पैर कट गए थे और सिर का ऊपरी हिस्सा भी उड़ गया था, मगर चेहरे पर कहीं खरोंच तक नहीं आई थी। अच्छी-भली बाइसेक साल की लड़की थी। कपड़े-लत्तों से भी तंगदस्ती नहीं झलकती थी।

पटरी के दोनों तरफ खड़े लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। गार्ड तथा अन्य रेल कर्मचारी भी वहां आ गए थे। गाड़ी से सवारियां उतर-उतरकर उधर ही आती चली जा रही थीं।

जयन्त का मन बुरी तरह से खिन्न हो गया और वह पलटकर अपने डिब्बे की ओर चल दिया। जब वह अपने कम्पार्टमेंट के पास पहुंचा तो उसने नैना के पिता को दरवाजे पर खड़ा पाया। उसे देखकर वह चितातुर स्वर में पूछ बैठे, "क्या हुआ? सुना है किसी का एक्सीडेंट हो गया है?"

जयन्त पायदान पर पांव टिकाकर बोला, "जी हां, ऐसा ही हुआ है।"

कई लोग जिन्होंने अपने चेहरे खिड़कियों से बाहर निकाल रखे थे, पूछने लगे, "कौन था?"

अत्यधिक दुखी होने के बावजूद उनका यह प्रश्न सुनकर जयन्त मुस्करा उठा, "भला यह कौन बता सकता है कि कौन है!" जयन्त ने संक्षेप में कहा, "कोई लड़की कट गई है।"

कई लोगों ने आश्चर्य से पूछा, "लड़की? लड़की कहां से आ गई ट्रेन के नीचे? क्या ट्रेन में ही सफर कर रही थी?"

जयन्त के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। इसके अलावा उसका मन इतना खिन्न हो गया था कि वह किसी से बात करने की मनःस्थिति में नहीं था। वह ट्रेन में दाखिल हुआ और भाभी तथा ज्योति के पास जाकर खड़ा हो गया। जयन्त की भाभी ने भी वही सवाल दुहराया, "कौन कट गया भैया—लड़की थी? पर लड़की इस जंगल में कहां से आ मरी?"

जयन्त झुंझला उठा, "कैसी बात करती हो भाभी? क्या लड़की कोई अजूबा चीज है जो दुनिया में नापैद हो गई है? ढेर सारी लड़कियां तो चारों तरफ फैली पड़ी हैं। जंगल हो या पहाड़, बस्ती हो या बियाबान, लड़कियां भला कहां नहीं हैं?"

जयन्त की भाभी और ज्योति उसका मिज़ाज देखकर सहम उठीं और फिर उन्होंने आगे कोई भी उत्सुकता प्रकट नहीं की। जयन्त के पास भी उनसे बात करने को कोई विषय नहीं था इसलिए वह अपनी बर्थ की ओर चला गया।

नैना के पिता भी दरवाजे से हटकर अपनी सीट की तरफ लौट आए और चिंता के स्वर में बोले, "लगता है गाड़ी काफी देर के लिए अटक गई है।"

जयन्त बोला, "जी हां, अब सारी फार्मेलटीज़ पूरी होने तक तो गाड़ी चलने से रही।" और अपनी बात कहकर उसने उचटती-सी नजर नैना के चेहरे पर डाली। नैना सिर झुकाए बैठी किसी गहरे सोच में डूबी लगती थी।

वह अपनी बर्थ पर बैठकर पत्रिकाएं पलटने लगा। पूरे डिब्बे में लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे और कुछ आत्महत्या को लेकर दार्शनिक ढंग से उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना में डूबे हुए थे।

इसी समय एक धक्के के साथ गाड़ी धीरे-धीरे रेंगने लगी। जो लोग गाड़ी के बाहर थे वह शोर मचाते हुए फटाफट गाड़ी में घुसते नज़र आए। कुछ तो इस तरह लौट रहे थे गोया किसी किले को फतह करके लौट रहे हों। गोया अगर वह गाड़ी से बाहर न गए होते तो गाड़ी रुकी ही पड़ी रहती।

अगला स्टेशन आने तक डिब्बे में लड़की की आत्महत्या को लेकर ही चर्चा होती रही। जयन्त ने पत्रिकाओं की ओट से नैना का चेहरा देखा। उसके चेहरे पर पूर्ववत् उदासी का भाव गहराया हुआ था और किसी प्रकार की हलचल से वह आंदोलित नहीं हो पाई थी। जयन्त ने सोचा, दुर्घटना शायद नैना के भीतर तक उतर गई है और वह उसकी भयावहता से पत्थर जैसी निश्चल हो गई है।

किसी स्टेशन पर गाड़ी ठहरी तो जयन्त बाहर चला गया और उसने प्लेटफार्म पर खड़े घुमन्तू चायवाले को डिब्बे के पास बुलाकर कई प्याले चाय देने को कहा। खिड़की में मुंह बढ़ाकर उसने नैना के पिता को दो प्याले चाय देकर कहा, "हालांकि इस चाय को गनीमत भी नहीं कहा जा सकता, पर क्या करें—यहां तो इससे बेहतर मिलने से रही।"

उन्होंने थोड़ी-सी झिझक दिखाते हुए चाय का एक प्याला ले लिया और बोले, "बस और जरूरत नही है। नैना और उसकी मां चाय नहीं पिएंगी। आप पियें।"

जयन्त ने आगे कोई आग्रह नहीं दिखाया और दो प्याले लेकर भाभी और ज्योति को देने चला गया।

चाय के प्याले खाली होने के बाद उसने चाय वाले को प्याले लौटा

दिए और बुकस्टाल से हिन्दी-अंग्रेजी के कई अखबार खरीद लाया। अखबारों को अपनी बर्थ पर रखने के बाद जयन्त ने गोलमोल सवाल किया, "आपके घर में क्या कोई चाय पीता ही नहीं है ?"

जयन्त के इस सवाल पर नैना ने अपनी आंखें क्षणांश के लिए ऊपर उठाईं और फिर दूसरी ओर घुमा लीं। नैना के पिता हंसकर बोले, "नहीं-नहीं, यह बात नहीं है। दरअसल नैना और उसकी मां नहा-धोकर पूजा आदि से निवृत्त होने के बाद ही कुछ लेती हैं। ट्रेन में इन लोगों की मुसीबत हो जाती है।"

लजाते हुए नैना ने प्रतिवाद किया, "इसमें ऐसी क्या मुसीबत है ? ऐसा कोई अवसर तो आया नहीं अभी तक जब चाय और खाना-पीना टल गया हो।"

जयन्त ने नैना का लजाया हुआ आरक्त चेहरा देखकर टिप्पणी की, "आप लोगों का क्या है—खाना-पीना आपके लिए उतना महत्त्वपूर्ण भी तो नहीं है। दूसरों को खिला-पिलाकर ही आपका पेट भर जाता है—अन्नपूर्णा जो ठहरी।"

नैना हल्के से हंसकर बोली, "अच्छा है आप ऐसा समझते हैं। दूर-दूर से लड़कियां आपको फूल सुंघनी लगती हैं। चलो अच्छा है आपके भ्रम अभी टूटे नहीं हैं, मगर सच्चाई यही है कि हम लोग भी खूब जमकर खाने पर टूटती हैं और आप से कहीं ज्यादा तगड़ी-मोटी होती हैं।"

नैना इतनी देर तक बोलने के बाद और भी अधिक लजा उठी। उसे बोलते देखकर जयन्त को भी अहसास हुआ कि नैना एकदम चुप्पी नहीं है, वह बहुत कुछ कह-सुन सकती है। यही नहीं, उसके अंतस्तल में न जाने कितने तूफान छिपे पड़े हैं।

जयन्त ने नैना से जान-बूझकर वार्तालाप कायम रखने के लिए कहा, "खाने के प्रति आपकी थोड़ी-बहुत आसक्ति देखकर मुझे खुशी हुई—बाकी मैंने लड़कियों को हमेशा यही कोशिश करते देखा है कि हम लोगों के सामने खाती-पीती नजर न आएं।"

"हो सकता है आपका अपना अनुभव यही हो—पर चाट-पकौड़े व्यापार तो हम लोगों के बलबूते ही खिंच रहा है।"

नैना के पिता हंसकर बोले, "चाट-पकौड़ी की दुकानें ही क्यों हकीम-डाक्टरों का खोमचा भी औरतों की वजह से सरसब्ज है।"

नैना और जयन्त के बीच बातचीत का सिलसिला चल निकला। ग्यारह बज रहे थे। नैना की मां और उसका भाई भी जयन्त से बातें करने लगे। इसी दौरान नैना के पिता ने अपनी पत्नी से गुजराती में कुछ पूछा। पति-पत्नी के बीच कई मिनट तक बातें होती रहीं जिनका कोई सिर-पैर जयन्त की समझ में नहीं आया।

जब उन दोनों की बातें समाप्त हो गईं तो नैना के पिता जयन्त की ओर मुखातिब होकर बोले, "नैना की मां कहती है कि आपके घर चलने पर सब लोगों को काफी तकलीफ होगी। चार लोगों को आप घर लेकर जाएंगे तो आपके भाई-भाभी पर अधिक बोझ पड़ जायगा।"

जयन्त बोला, "बोझ की तो कोई बात ही नहीं है साहब! मेरी भाभी और बहन तो साथ चल ही रही हैं—वहां घर में कौन बैठा है? भाभी और हम लोग पहुंचेंगे तभी वहां घर जैसी कोई चीज़ होगी। घर में भाई तो होंगे भी नहीं शायद—वह कई-कई दिनों के लिए टूर पर निकल जाते हैं। हमें घर पर तो नौकर के ही दर्शन हों शायद।"

"देख लेंगे फिर स्टेशन पर उतरकर, आप जो कहेंगे वही कर लेंगे। हम लोगों को ज़्यादा तो कहीं बीच में ठहरना भी नहीं है—क्योंकि अमरनाथ के दर्शन करके जल्दी ही वापस लौटना है। हम लोग बरसात शुरू होने से पहले ही अहमदाबाद पहुंच जाना चाहते हैं। घर छोड़े हुए बहुत दिन हो चले हैं।"

जयन्त को नैना के पिता की बात का उत्तर देने का अवसर नहीं मिला। नैना की मां और पिता के बीच फिर कोई सलाह-मशविरा होने लगा। जब नैना की माताजी चुप हुईं तो पिता बोले, "हां, हमें वैष्णोदेवी भी जाना है इसलिए दो दिन तो जम्मू में इसी यात्रा के सिलसिले में लग जाएंगे।"

जयन्त ने कहा, "ठीक है, वहां भी चले जाइएगा।" इसके बाद वह अपने स्थान से उठकर चला गया और अपनी बहन-भाभी को साथ लेकर लौट आया। उसने बहन-भाभी का परिचय नैना की मां तथा पिता को

दिया। नैना अपने स्थान से उठकर खड़ी हो गई और ज्योति तथा जयन्त की भाभी के लिए जगह बनाते हुए बोली, "इधर आइये, आप वहां क्यों खड़ी हैं?"

जयन्त की भाभी और ज्योति सकुचाते हुए नैना और उसकी माताजी की बगल में बैठ गई और थोड़ी देर में ही उनके बीच अपरिचय का जो सेतु था वह टूट गया। बातों-बातों में ही जयन्त की भाभी ने नैना की मां से आग्रहपूर्वक कहा, "आप जम्मू में हमारे साथ ही ठहरेंगी।"

नैना के पिता बोले, "जैन्त बाबू भी यही बात कह रहे थे। मैं सोचता हूं, इससे आप लोगों को कष्ट होगा।"

"काहे का कष्ट? आप कोई हमारे ऊपर बोझ बनकर थोड़े ही रहेंगे। वहां अच्छा लम्बा-चौड़ा कई कमरों का मकान है—घर में काम करने वाले आदमी भी हैं—फिर एक-दो रोज बाद वैष्णोदेवी हो आइएगा। आसपास जो भी देखने लायक होगा उसे देखने का भी इनके भाई इन्तज़ाम करा देंगे। उनके पास सरकारी जीप रहती है।"

नैना की मां सहज भाव से हंस कर बोली, "हमें तो आपके पास ठहरने में सुख-सुविधा ही होगी।" फिर एक क्षण ठहरकर कहने लगी, "हम अमरनाथ जाना चाहते हैं—आप भी अमरनाथ चलें तो क्या कहना—बड़ा सुन्दर साथ रहेगा।"

जयन्त की भाभी एक क्षण सोचकर बोली, "इनके भैया कह तो कई बार चुके हैं मगर अभी हम लोगों का जाना नहीं हो पाया है। हां, वैष्णोदेवी तो कई दफा जा चुकी हूं। जो भी कोई बाहर से आता है और हमारे साथ ठहरता है उसके साथ चली जाती हूं।"

जयन्त की भाभी और नैना की मां बातों में लग गईं। उधर नैना और ज्योति भी एक-दूसरे से बतियाने लगीं। जयन्त चुपचाप उन लोगों को बातें करते देखता रहा।

थोड़ी देर में ही महिलाओं में अपनापा पैदा हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वह हमेशा से एक-दूसरे के साथ ही रहती चली आई हों।

कोई डेढ़ घंटे बाद जम्मू का स्टेशन आ गया। सब लोग व्यस्तता अपना असबाब समेटने में लग गए। गाड़ी से उतरने के बाद जयन्त ने सा

लोगों का सामान एक जगह रखवा दिया और स्टेशन पर भाई को टेली-फोन करने चला गया। भाई से सम्पर्क स्थापित होने के बाद उसने बतला दिया कि एक अन्य परिवार भी साथ है इसलिए जीप भेज दें।

लौटकर उसने सब लोगों से कहा, "चलिए, हम लोग स्टेशन से बाहर चलते हैं, अभी चंद मिनट में जीप आ जाएगी।" इसके बाद वह भाभी की ओर मुंह करके बोला, "मैंने भैया को इन लोगों के साथ आने की सूचना भी दे दी है।"

भाभी हंसकर बोलीं, "अच्छा किया पर उन्हें खबर करने न करने से क्या फरक पड़ता है—वो क्या कोई घर से निकाल देते?" इसके बाद वह नैना की मां की तरफ मुड़कर बोलीं, "इनके भैया तो एकदम भोले भंडारी हैं। हर बात को बड़ी जल्दी से मान लेते हैं—मैं किसी बात में कुछ पूछती हूं तो बस यही बोल कर अलग हो जाते हैं—तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।"

जयन्त आंखें तरेरकर बोला, "अच्छा तो सिर्फ भैया ही भोले बाबा हैं —हम कुछ भी नहीं हैं?"

"तुम? तुम से ज्यादा तो कोई टेढ़ा हो ही नहीं सकता।" फिर नैना से बोलीं, "इनके जैसा ऐंठू आदमी मुश्किल से होगा कहीं। बात-बात पर पिनक उठते हैं। इनसे तो मुझे बोलते हुए भी डर लगता है। सीधी बात भी पूछे कोई तो पता नहीं इनका मिजाज कहां जा पहुंचता है।"

नैना की मां ने जयन्त की ओर लाड़-भरी नजर से देखकर कहा, "लड़के ही तो हैं अभी—जिन्दगी का जुआ कंधे पर आ पड़ेगा तो सब सीख जाएंगे। यही उमर होती है जब आदमी सौ बार रूठता है तो हजार बार मनाने वाले दाएं-बाएं खड़े होते हैं—बाद में तो मन की बात जानने वाला भी कोई नहीं होता।"

जयन्त ने नैना की मां की बात सुनकर चोरी से नैना का चेहरा देखा। नैना की आंखों में असीम वेदना का पारावार उमड़ उठा था। उसकी मां ने किसी विशेष को लक्ष्य करके अपनी बात नहीं कही थी लेकिन नैना के मर्म को वह बात भीतर तक वेध गई थी।

जयन्त ने अपना चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया और स्टेशन से बाहर

निकल गया। उसने सामने से जीप आते देखी तो तेजी से दौड़कर सब लोगों के पास पहुचा और बोला, "चलिए-चलिए, जीप आ गई है। अब हम लोगो को पहुचने में कुछ भी देर नही लगेगी।"

जब जयन्त पूरे काफिले को साथ लेकर घर पहुंचा तो जयन्त के बड़े भाई बाहर निकलने की तैयारी में थे। जीप की आवाज सुनकर ही वह बाहर निकले थे। जयन्त को देखकर उन्होंने पूछा, "रास्ते में कोई तकलीफ तो नही हुई?"

जयन्त के साथ कई अपरिचितों को देखकर भी उन्होंने कुछ नहीं पूछा। नैना के माता-पिता को नमस्कार करके वह बोले "आइए-आइए, आप लोग अन्दर चलिए।"

जब सब लोग घर मे पहुच गए तो उन्होंने कहा, "ठीक है आप सब लोग नहा-धोकर आराम करें, नाश्ता हीरा (नौकर) बना ही रहा है। मैं दोपहर को लंच पर जरूर पहुंच जाऊंगा।" और यह कहने के साथ ही बाहर दरवाजे पर खड़ी जीप की तरफ बढ गए।

जयन्त के भाई के पास लम्बा-चौड़ा बंगला तथा बाहर खुला हुआ लॉन था। पेड़-पौधो तथा बड़े-बड़े वृक्षो से घिरा हुआ वह आवास गर्मी के इस बीहड मौसम मे बहुत राहत देने वाला था।

जयन्त, नैना के पिता और ज्योति बाहर ही लॉन मे बैठ गए। नैना और उसकी मां दैनिक क्रियाओं मे निवृत्त होने के लिए भीतर चली गईं। हीरा बाहर बैठे लोगो के लिए वही चाय ले आया। इस दौरान जयन्त की भतीजी जो कोचिंग क्लास मे पढने गई थी लौट आई और जयन्त के पास आकर पूछने लगी, "चाचा, आप इतने बीमार क्यों हो गए थे?"

जयन्त ने उसकी चोटी मे खेलते हुए कहा, "तू जो कभी मुझे देखने नही आती इसीलिए मैं बीमार हो जाता हूं। इस दफा मैं तुझे अपने साथ ही लेकर जाने वाला हू।"

बेबी ने अजनबी आदमी की तरफ देखा मगर पूछा कुछ नही तो जयन्त ने बतलाया, "बेबी, येबाबू जी अहमदाबाद से आए हैं—अब हमारे पास ही रहेंगे, घर मे जाकर देखो और लोग भी आए हैं। तुम्हे इन लोगो के साथ घूमकर जो भी यहां देखने की जगह हो दिखानी है।"

बेबी ने अपने छोटे भाई बबलू को सामने से आते देखा तो वह उन लोगों को वहीं छोड़कर उधर ही दौड़ गई।

नैना, उसकी मां और जयन्त की भाभी स्नानादि से निवृत्त हो चुकीं तो उन्होंने ज्योति और जयन्त से कहा, "आप लोग भी नहा-धो लें अब।"

जयन्त की भाभी बोलीं, "नाश्ता तैयार हो चुका है, आप लोग झटपट निपटकर आ जाइए।"

ज्योति घर में चली गई तो नैना के पिता बोले, "आप बड़े खुश-किस्मत हैं। आपको इतने देवतास्वरूप भाई-भाभी मिले हैं।" फिर वह पूछने लगे, "परिवार में और कौन-कौन लोग हैं?"

जयन्त ने कहा, "हम दो ही भाई हैं। एक यह छोटी बहन है। पढ़ाई तो इसकी समाप्त हो चुकी है—अभी तक कोई ठीक-ठाक लड़का नहीं मिला है। बस इसका विवाह हो जाय तो हम सभी लोग मुक्त हो जाएं। माता की मृत्यु ज्योति जब बहुत छोटी थी तभी हो गई थी। पिताजी अभी तीन साल पहले दिवंगत हुए हैं। भाई साहब यहां मिलिट्री एकाउंट्स में डिप्टी कन्ट्रोलर के पद पर हैं। मैं वहां दिल्ली के नज़दीक रहकर पूछना सी० ए० का काम देख रहा हूं। भाई साहब के यही दो बच्चे बेबी और बबलू हैं।"

नैना के पिता प्रसन्नता व्यक्त करके बोले, "ईश्वर की कृपा है आप लोगों पर, बड़ा भला परिवार है।" वह कुछ मिनट चुप रहकर पूछ बैठे, "आपने अभी तक विवाह नहीं किया? अब तो आप अपना काम भी करने लगे हैं।" फिर वह चुटकी लेकर बोले, "लगता है वैराग्य भाव मन में समाया हुआ है। रास्ते में आपसे जो बातें हुईं उनसे भी यही लगता है कि आप दर्शनशास्त्र की मोटी-मोटी किताबें पढ़ते हैं।"

जयन्त ने हंसते हुए कहा, "वैराग्य जैसी चीज़ तो वास्तव में कहीं होती ही नहीं है। मैंने ऐसा आदमी अभी तक कोई नहीं देखा जिसमें निवृत्ति ही निवृत्ति हो। जीवन का पथ तो घोर प्रवृत्तिजन्य है, जो वैराग्य की बात करता है वह बस स्वयं को धोखा देता है। संसार में रहते हुए निवृत्ति, मोक्ष, वैराग्य सब व्यर्थ की बातें हैं। जब राम, कृष्ण जैसे भगवानों को इस संसार में बार-बार जन्म लेना पड़ता है तो हम साधारणजन किस

वैराग्य और मोक्ष का दावा कर सकते हैं ! रही मोटी-मोटी पोथियां पढ़ने की बात—वह तो मेरे पेशे का ही एक हिस्सा है, मगर जाहिर है वह किताबें दर्शनशास्त्र के मोटे-मोटे ग्रंथ नहीं हैं बल्कि एकाउंट्स की सिर खाऊ किताबें हैं।"

जयन्त की गंभीर मीमांसा सुनकर मैना के पिता मुग्ध भाव से उसे एक क्षण निहारते रहे और फिर प्रशंसा के भाव से कहने लगे, "मैं यह देखकर चकित हूं कि आप इतनी थोड़ी उम्र में सारी बातें जानते ही नहीं बल्कि उनकी गहराई में भी जाते हैं। निवृत्ति और प्रवृत्ति को लेकर जो बात आपने कही है उसे हमारे आज के तथाकथित बड़े-बड़े भगवान भी नहीं जानते। वह साधारण आदमी को ऐसे उपदेश देते हैं जिनका अर्थ स्वयं उन्हें तक पता नहीं है। यही नहीं वह स्वयं इतने बड़े आत्मविरोधी और प्रवचक हैं कि जो कुछ कहते हैं अपनी जीवन पद्धति से उसे काटते चले जाते हैं। आत्मनिग्रह की बातें कहते हैं पर भौतिक चीजों को असीम तक जोड़ते चले जाने में उनका सारा जीवन लिप्त है।"

अपनी प्रशंसा सुनकर जयन्त संकोच में पड़ गया। वह धीमे स्वर में सकुचाते हुए बोला, "यह आपका मेरे प्रति अनन्य प्रेम-भाव ही है बाकी मैंने कोई गंभीर *अध्ययन* नहीं किया है। आप जैसे सत्पुरुषों के नजदीक आता-जाता रहा हूं इसीलिए शायद कभी-कभी छोटे मुंह से बड़ी-बड़ी बातें बोल जाता हूं।"

"मैं यह नहीं मान सकता कि भीतर तक पैठे बिना कोई जीवन के महान सत्यों को जान-समझ सकता है, पर हां एक बात हो सकती है कि आपके पूर्वजन्म के संस्कार इतने प्रबल रहे हों कि आप आत्मानुभूत सत्यों को सहज भाव से ग्रहण कर गए हों।"

अब जयन्त के चकित होने की बारी थी। वह मुस्कराकर बोला, "आप स्वयं को ही लीजिए। वैसे तो आप व्यापार करते हैं, लेकिन आत्मानुभूत तक आपकी कितनी गहरी पैठ है ! मैं यह भी मान सकता हूं कि आपने गंभीर अध्ययन करके आध्यात्मिक शब्दावली प्राप्त की हो, किन्तु जो *अभिव्यक्ति* आपके पास है क्या वह स्वतः आपके भीतर से नहीं उभर सकती ?"

"अरे जैन्त भाई! हमें गहरी बातों की कोई समझ नहीं है। आप जैसे शिक्षित और संस्कारी सज्जनों का संसर्ग मिल जाता है तो कुछ सीखने की चेष्टा करते हैं। हमारी तो सारी जीवनचर्या ही जोड़ने-घटाने में बँधकर रह गई है। फिर मैं तो यह भी मानता हूं कि मनुष्य तो मात्र [illegible] वाहक है—ईश्वर जो भी उससे करवाना चाहता है वही करता है। वह नियतिबद्ध है—प्रारब्ध की अवहेलना करना या उसे टाल दे जाना किसी के वश में नहीं है।"

"लेकिन यह तो बहुत ही परवशता का द्योतक है। हम यह क्यों मान लें कि हमसे जो चाहे कराया जा सकता है और हम उसका कोई विरोध नहीं कर सकते या कि चाहिए उसे तर्कसंगत न मानने पर भी किसी अंधे-अज्ञानी मालिक का हुक्म आँखें बंद करके मान लेने को बाध्य हैं?" जयन्त ने आवेश के साथ कहा।

"हाँ, ऐसा ही है। आप लाख सिर पटक लें, आपका चाहा हुआ होता ही चला जाए ऐसा वास्तविक जीवन में कभी होता नहीं है। आपको मार्ग का ठीक-ठीक ज्ञान हो और आ... पर चलते चले जाएँ तो मंजिल तक पहुँच ही जाते हैं, परन्तु जीव... न उपलब्धियाँ अनुरूप ज्ञान हो जाने से नहीं मिल जाती। आपके ... में हो... नहीं बैठता। आप लाख सावधानी बरतें ... हो, मगर ... कोई गारंटी नहीं है ... आदमी के ... की क्या ... हरि-कृ... मार्ग ... जाने...

"हम और आप चला रहे हैं और कौन है चलाने वाला ?"

जयन्त की बात सुनकर नैना के पिता विनम्रता से मुस्करा दिए और पूछ बैठे, "आप और हम कौन हैं ? कहां से हमारा आविर्भाव हुआ है ? क्या दैहिक रचना की प्रक्रिया ही अंतिम स्थिति है ? यदि ऐसा है तो माता-पिता के अतिरिक्त और किसी का दखल बाकी ही नही रहता। वह एक दैहिक क्रिया के द्वारा सन्तानोत्पत्ति करते हैं—वही उसके नियन्ता हैं—फिर उसे जैसा चाहे बना डालें। पर क्या वह सन्तान को वैसा ही बना पाते है जैसा कि वह चाहते हैं ? उसके अस्तित्व की सीमाओं का निर्धारण क्या उन्ही के हाथ में है ? यदि ऐसा हो तो फिर कोई समस्या बाकी ही न रह जाए। कौन व्यक्ति अपनी सतान को अपग-अपाहिज, कुदर्शन-विपन्न बनाना चाहेगा ? माता-पिता अपनी संतान के हित के अतिरिक्त तो कभी कुछ नही सोचते, पर क्या आप कह सकते है कि माता-पिता के सन्तान-हित सोच लेने पर सतान का हित होता ही चला जाता है ? माता-पिता की सदेच्छा उसे दुर्भाग्य से बचाकर कही सुरक्षा और शरण दे पाती है ? फिर एक और भी तथ्य विचारणीय है कि यह जो मानव का आविर्भाव इस पृथ्वी पर हुआ है वह क्या स्वत ही हुआ है ? इसके आरम्भ की कथा तो कुछ भिन्न अवश्य ही होगी। वही मुर्गी और अडे वाली बात है।"

इसी समय देवी पास आकर बोली, "चलिए, आप लोगों को मर्मी बुला रही है—नाश्ता मेज पर लगा दिया गया है।" जयन्त और नैना के पिता उस गंभीर चर्चा को फिर आगे नही चला सके। नैना के पिता उठते हुए बोले, "चलो बेटी, हम तो भूल ही गए थे कि पेट की पुकार कुछ और है और दिमाग का क्षेत्र कही और है।" फिर वे जयन्त की ओर मुड़कर बोले, "जैन्त बाबू, आपसे बहुत अच्छी चर्चा हो रही थी। वास्तव मे इतनी उम्र में ही आप मनस्वी हो चले हैं। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आप जैसे महामना से मेरा इतना आकस्मिक सम्पर्क हुआ। चलिए आपसे इसी विषय पर फिर जमकर चर्चा होगी।"

जयन्त कोई उत्तर नही दे पाया क्योंकि इसी क्षण नैना अदर से आती दिखाई पड़ी। वह अपने पिता की ओर उन्मुख होकर बोली, "पिताजी, क्या आज स्नान-पूजा आदि की हड़ताल करने का इरादा है ? दोपहर

ढलने को हो रही है और आप अभी तक दैनिक कार्यों से निवृत्त भी नहीं हो पाए।"

नैना के पिता ने जयन्त की ओर संकेत करके कहा, "पूजा तो इनका सत्संग पाकर ही पूरी हो चली है। रही स्नानादि की वात, तो उसमें दस मिनट से अधिक लगने का प्रश्न ही नहीं है।"

यह कहते हुए वह नैना के हाथ से अपने कपड़े लेकर गुसलखाने में चले गए। जयन्त दूसरी तरफ मुड़ने लगा तो नैना ने धीरे से कहा, "आपका साथ पाकर पिताजी समय का ध्यान भी भुला वैठते हैं—आप दोनों के बीच किस विषय पर चर्चा हो रही थी?"

"किसी खास विषय पर तो वार्तालाप नहीं हो रहा था, वस यों ही वात में से वात निकलती जा रही थी। और पिताजी का स्वानुभव वड़ा व्यापक है—उन्होंने जिन्दगी को गंभीरता से समझा है। गहरे अवगाहन के बिना उस तरह की अभिव्यक्ति संभव ही नहीं हो सकती। लगता है वह आध्यात्मिक विषयों पर वहुत डूबकर चिन्तन-मनन करते हैं।"

नैना अपने पिता की प्रशंसा सुनकर खिल उठी और वोली, "हमारे पिताजी वहुत ही आधुनिक विचारों से समन्वय करने में समर्थ हैं। वह विद्यानुरागी हैं और प्रत्येक विषय को उसके विस्तार में जाकर जानने-समझने की चेष्टा करते हैं। पूजा-पाठ के प्रति उनकी गहरी रुचि है मगर वह तार्किक पद्धति के हिमायती हैं। प्रत्येक वात को उसके मूल में जाकर समझना उन्हें अच्छा लगता है।" अपनी वात कहते-कहते वह अचानक ठहरकर वोली, "अरे वाप रे? मैं तो अपने पिताजी की प्रशंसा किए ही चली जा रही हूं। आप भी क्या सोचते होंगे न जाने!"

"सचाई को कहने में तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आपने जो कुछ कहा है उसमें रत्ती-भर भी तो मिलावट नहीं है। मैं तो उनसे आज शाम तक ही वातें करता चला जाता—वह तो वेवी ने वीच में वाधा दे दी। चलो यह भी अच्छा ही हुआ कि वेवी हम लोगों को नाश्ते की याद दिलाने आ गई अन्यथा उन्हें आज भूखा ही रहना पड़ता।"

"वेवी आपको नाश्ते की याद दिलाने नहीं आई थी। अव पूरा खाना वन चुका है—मालूम है क्या वक्त होने जा रहा है?" नैना ने सिर ऊपर

उठाकर आसमान की ओर संकेत किया।

जयन्त ने सूरज की ओर देखकर कहा, "अरे कमाल हो गया—आज तो हम लोगों ने बातों से ही पेट भर डाला।"

नैना के पिता जिनका गोत्र याज्ञनिक था—उन्हें स्नानघर से निकलते देखकर जयन्त ने कहा, "अरे याज्ञनिक जी, आप तो नहा भी लिए।"

"नहाना क्या बस दो लोटे पानी डाल आया बदन पर। ट्रेन में सफर करने के बाद स्नान टाला नहीं जा सकता वर्ना तो मेरा नहाना बहुत समय तक चलता है।"

जयन्त बोला, "आप जितनी देर में पूजा से निपटेंगे—मैं भी आधा लोटा बदन पर डाल आता हूं।"

"नहीं-नहीं पानी का वैसा दुष्काल यहां उपस्थित नहीं है—आप इत्मीनान से नहाइए।"

जयन्त उनकी बात पर हंस पड़ा—क्योंकि दो लोटा पानी बदन पर डाल आने की बात उन्होंने बतौर मुहावरा कही थी।

अभी तक जयन्त के भाई नहीं लौटे थे। खाना मेज पर लगाया जा चुका था और जयन्त के बड़े भाई की प्रतीक्षा की जा रही थी। विलम्ब होते देखकर जयन्त की भाभी मीनाक्षी बोली, "उनका तो कोई ठिकाना नहीं है—कई बार दफ्तर में ही लंच कर लेते हैं। अब बहुत वक्त हो रहा है—अच्छा तो यही होगा कि आप लोग खाना खा लें।"

इसी समय टेलीफोन की घंटी बज उठी। ज्योति लपककर टेलीफोन सुनने चली गई। जब वह लौटकर आई तो बोली, "बड़े भैया दोपहर के खाने पर किसी के साथ चले गए हैं—आज वह नहीं आएंगे। उधर से खबर आई है कि वह अब रात को ही लौटेंगे।"

"मैं न कहती थी कि उनका ऐसा ही प्रोग्राम होता है—कह तो जाते हैं मगर कुछ भी तय नहीं रहता। कई बार तो दफ्तर से ही कई-कई दिन के लिए निकल जाते हैं।"

"ठीक है तो हम लोग अब खाना खाते हैं—आप भूखी बैठी रहिए।" कहकर जयन्त ने अपनी भाभी की ओर देखा।

मीनाक्षी मुस्कराकर बोली, "अब तो खाने के इंतजार में भूखी बैठने का नम्बर तुम्हारे वाली का है—मैं क्यों बैठूंगी !"

"नहीं-नहीं, बैठी रहो—अभी क्या जल्दी है? पहले तो दो-दो दिन तक उपवास किया करती थीं—वह जोश क्या अब बिल्कुल ही खत्म हो गया।"

मीनाक्षी ने कहा, "पन्द्रह वर्ष बाद न जाने कितनी चीजें खत्म हो जाती हैं—इसका कोई हिसाब है।"

जयन्त ने सब लोगों को सम्बोधित करके कहा, "बात यह है कि जब हमारी प्यारी भाभीजान के सात फेरे हुए थे और वह नई-नई घर में आई थीं, तो खाना उस वक्त तक नहीं खाती थीं जब तक हमारे आदरणीय भाई साहब उनके लिए अपनी थाली खाली नहीं कर देते थे। बाद में यह इजाफा हुआ कि वह मां की अनुपस्थिति में भाई साहब की बगलगीर होकर खाने लगीं। ऐसे भी अवसर कितनी ही मर्तबा आए जब भाई साहब दफ्तर से ही कहीं उड़नछू हो गए और भाभी इंतजार में टापती ही रह गईं। बाद में भाई साहब ने कहा, 'इस तरह भूखी मरा करोगी तो सात जनम की तो बात ही क्या—हमारे साथ इस जनम में भी नहीं चल पाओगी। या फिर यह हो सकता है कि जब मैं घर में न रहूं तो बाहर जाकर तुम्हारी तरह ही उपवास किया करूं।' भाई साहब की इस धमकी ने काम किया और साहबान, हमारी भाभी को भाई साहब का इंतजार करने से निजात मिल गई।"

जयन्त की इस वर्णन-शैली पर सब लोग मुक्त होकर हंस पड़े। मीनाक्षी शरमाकर बोली, "सारी बातों में नमक-मिर्च मिलाकर कहने की आदत हो गई है जैन्त भैया को तो—जबकि बात बिल्कुल ऐसी नहीं है। मैं कभी भूखी नहीं बैठी रही उनके इंतजार में।"

जयन्त मीनाक्षी को खिझाते हुए बोला, "पच्चीस जनवरी सन्···की बात याद है जब सारी रात जंगले पर टंगी रही थीं—और भाई साहब जब लौटे थे तो मुंह फुलाकर बिस्तर में घुस गई थीं।"

"रहने दो, रहने दो—एकाध बार वैसा हुआ होगा मुश्किल से।" मीनाक्षी ने प्रतिवादी स्वर में कहा।

इसी समय हीरा आकर बोला, "साब, खाना लग चुका है।"

"अरे हां चलो भई—खाना तो बराबर टलता ही आ रहा है आज। मेहमान लोग भी क्या कहेंगे कि इस घर में सबको बातें करते चले जाने का मर्ज़ है।" कहकर मीनाक्षी व्यस्तता से उठकर चल दी। मीनाक्षी के पीछे सब लोग खाने के कमरे की ओर बढ़ लिए।

खाने की मेज पर जब सब लोग बैठ गए तो जयन्त ने पाया कि नैना उसके सामने की कुर्सी पर बैठी है। जयन्त ने देखा कि उसके चेहरे पर जयन्त की बातें सुनते समय या उससे अकेले में बातें करते समय जो सहज भाव आ गया था वह इस समय एकदम गायब है। उसे देखकर यह लगता था जैसे उसे खाने की मेज पर जबरन बिठा दिया गया हो। वह एकदम दुग्ध-ग्नेत साड़ी पहने थी। माथा और मांग सूनी थी, हाथ-पैरों-गले में कोई भी आभूषण नहीं था। वह एक उदास तपस्विनी जैसी लग रही थी। यदि उसके हाथ में एकतारा दे दिया जाता तो वह तस्वीरों में अंकित की जाने वाली जोगिन दिखाई पड़ने लगती।

खाना शुरू हुआ तो जयन्त ने उसकी आंखों से अपनी दृष्टि को भरसक बचाते हुए देखा कि वह बहुत अन्यमनस्क भाव से छोटा-सा कौर तोड़कर देर तक चबाती जा रही है। खाना खाते समय भी उसके होंठ मजबूती से बंद किए हुए लग रहे थे। उसके इस स्वरूप को देखकर जयन्त का मन एकदम खाने से हट गया और वह भी सिर्फ साथ देने के लिए खाने की मेज पर बैठा रहा।

जब मीनाक्षी ने नैना को खाने के प्रति विरक्त देखा तो पूछ बैठी, "लगता है खाना एकदम बेस्वाद बना है।"

नैना सकपका कर बोली, "नहीं-नहीं—कौन कहता है—खाने में तो कोई कमी नहीं है।"

"फिर खा क्यों नहीं रही हो भाई?" मीनाक्षी ने उसकी प्लेट में उन व्यंजनों को रखते हुए कहा, जिन्हें नैना ने अपनी प्लेट में परसा ही नहीं था।

खाना खत्म करने के बाद सभी लोग बाहर लॉन में बैठकर बातें करने लगे। बबलू और बेबी एक तरफ जाकर खेलने-कूदने में ल

महिलाओं की बातचीत घरेलू ढंग की कामकाजी थीं तो याज्ञनिक और जयन्त की घोर दुनियादारी की सीमाओं को तोड़कर परमार्थ की दिशाओं में जाती हुई।

नैना की माताजी ने मीनाक्षी से पूछा, "बिटिया (ज्योति) की पढ़ाई-लिखाई तो खत्म हो गई होगी—या अभी किसी कालिज में स्टडी कर रही है।"

मीनाक्षी ने कहा, "आप तो जानती ही हैं कि इस जमाने में लड़के-लड़कियों की पढ़ाई तो कभी समाप्त ही नहीं होती। एम० ए० तक पढ़ जाना भी काफी नहीं है। एम० ए० करने के बाद दूसरा एम० ए० किया जाता है। वो भी खत्म हो जाता है तो पी-एच० डी० किया जाता है। उसके बाद कोई ट्रेनिंग होती है। इसी तरह आधी उम्र निकल जाती है।"

ज्योति ने आंखें तरेरकर मीनाक्षी की ओर देखा और उसके चेहरे पर व्यंगात्मक मुस्कराहट उभर आई। वह नैना की ओर मुंह करके बोली, "हमारी भाभीजी को एम० ए० वगैरह से बड़ी चिढ़ है। जब बेचारी की शादी हुई थी तो इंटर में पढ़ती थीं। बस तब से आगे नहीं बढ़ पाईं। मगर इन्हें कौन बताए कि मदरहुड (मातृत्व) की पढ़ाई पढ़ लेने के बाद ये सारे पी० एचडियों और डीलिटों को पीछे छोड़ गई हैं।"

नैना की माताजी ज्योति के कटाक्ष पर हंस पड़ीं और बोलीं, "बेटी, इसने (मीनाक्षी ने) तो यह सारी उपाधियां ले लीं, पर तुम्हें भी तो इन्हें लेना पड़ेगा। कितने ही बी० ए०, एम० ए० कर जाओ, आखिर में तो घर, गृहस्थी ही संभालनी पड़ती है। हम औरतों का इसके बिना तो कोई गुजारा ही नहीं चलता।" यह कहने के बाद उन्होंने मीनाक्षी को सम्बोधित किया, "क्यों बहू रानी, मेरी बात ठीक है या नहीं?"

मीनाक्षी ने नैना की मां से कहा, "आप सौ फीसदी सही बात कहती हैं। औरतें कितनी भी पढ़-लिख जाएं—रहती तो औरतें ही हैं।"

मीनाक्षी की इस बात पर ज्योति खिलखिलाकर हंसने लगी। जब उसकी हंसी थमी तो बोली, "भाभी, आपने यह क्या बात कही कि पढ़ने-लिखने के बाद भी औरतें-औरतें ही रहती हैं! आदमी पढ़ने के बाद क्या

कुछ और हो जाते हैं—क्या उनके बड़े-बड़े सींग निकल आते हैं?"

ज्योति की बात जयन्त के कान में भी पड़ गई थी। उसने कहा, "हां ज्योति, सींग तो निकल आते हैं पर फर्क सिर्फ इतना ही होता है कि वह आदमी के नहीं औरतों के सिर पर निकल आते हैं। अगर न निकल आते होते तो तू एम० ए० पास करने के बाद भी इतनी मरघनी कैसे हो जाती?"

"रहने दो भैया अपनी शेखी की तीन टांगें। हमारे पूरे समाज में यह अन्याय फैला पड़ा है। औरतों को चाहे कितनी भी शिक्षा दे दी जाय—वह चाहे कितनी भी योग्य और समर्थ क्यों न हों, मगर आदमी अपनी सुपीरियरिटी (श्रेष्ठता) किसी हाल में छोड़ने को तैयार नहीं है। आदमी चाहे जिस तरह से रहे, कोई-सा रास्ता अपनाए, पर औरतों को वही घरेलू और बंधीबंधाई ज़िन्दगी मिलती है। मैं तो उन औरतों को ज्यादा खुश-किस्मत मानती हूं जो घोर गंवार कही जाती हैं—कम-से-कम पढ़ने-लिखने की मुसीबत से तो उन्हें छुटकारा मिला रहता है। हम लोगों ने बीस बरस स्कूल-कालिज में गंवाकर कौन से बड़े तीर मार लिए। जो ज़िंदगी बेपढ़ी-निरक्षर जी रही हैं वही हमारे लिए है। फिर इस पढ़ने-लिखने का लाभ भी क्या है?"

जयन्त ने कहा, "तुम आंशिक, यानी आधा सत्य बोल रही हो। यह ठीक है कि औरतों की वास्तविक जगह चहारदीवारी के भीतर ही है लेकिन सोचने-समझने और आदमी-औरत के बीच के अन्तर को जानने-समझने की दृष्टि तो उन्हें पढ़ाई-लिखाई से ही मिलती है। यह एक प्राकृतिक नियम है कि आदमी-औरत की रचना और जीवन-दृष्टि में अंतर बना रहे। उसी नियम के अनुसार दोनों का कार्यक्षेत्र अलग-अलग है। किसी के लिए यही स्थिति ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है कि उसे अपनी प्रकृति के अनुसार कार्यक्षेत्र मिले। पुरुष जिन मूल्यों और आदर्शों के लिए घर-द्वार छोड़कर जिस आसानी से घरबार से अलग हो जाते हैं वैसा औरतों के लिए सहज नहीं है। उन्हें घर-गृहस्थी हमेशा अपनी ओर खींचती रहती है। यहां तक कि जिन्हें वह यथासमय नहीं मिल पाती। वह पूर्णतः कुंठित हो जाती हैं। थोड़े समय बाद ही उनकी तेजस्विता और उत्साह उन्हें धोखा दे जाता है।"

"ऐसा कुछ नहीं है भाई साहब—यह सब आपके मन का वहम है। औरतों को जब अपने मन का क्षेत्र चुनने का अवसर मिल जाता है तो वह भी पुरुषों से पीछे नहीं रहतीं। जो बातें आप बतला रहे हैं वह सब 'आउट डेटेड थ्योरीज़' (समय से पिछड़े हुए सिद्धांत) हैं आज। इसका उदाहरण खोजने की ज़रूरत भी नहीं है। ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा-शासन कोई भी क्षेत्र इस देश या सम्पूर्ण विश्व में ऐसा नहीं है जहां स्त्री जाति ने अपना सिक्का जमाकर न दिखलाया हो।"

"वेल सैंड" कहकर याज्ञनिक महोदय ने ज़ोर से ताली बजाई और बोले, "जयन्त बाबू ! मैं तो आपको ही मानता चला आ रहा था, मगर आपकी छोटी बहन तो प्रखरता के समस्त सोपान तोड़ गई।"

"डिबेट (वक्तृता) में तो लड़कियां लड़कों से हमेशा ही बाजी मार ले जाती हैं। यह स्थिति तो हम-आप अपने घरों में प्रत्येक क्षण देखते हैं। लड़कियां बातें करने में किसी से पीछे नहीं रहतीं और औरतों के सामने घर का कोई भी आदमी कुछ बोल सके इसकी नौबत ही नहीं आती। मैंने अच्छे से अच्छे ओरेटर्स (वक्ताओं) के बारे में भी यही सुना है कि घर में घुसते ही भीगी म्याऊं बन जाते हैं। बाकियों को तो छोड़िये, सुकरात जैसे फिलॉसफर किंग की भी ऐसी ही हालत होती थी। जो सुकरात घर से बाहर निकलकर अपने शिष्यों के सामने लगातार घंटों तक भाषणबाजी करता चला जाता था, अपनी बीवी के सामने उसे काठ मार जाता था।"

जयन्त की बात पर सब लोग हंस पड़े और मीनाक्षी ने कटाक्ष किया, "मगर आप तो इस हालत से बचे ही रह सकते हैं। जब सारा कुछ जानते-समझते हैं तो फिर यह नौबत आपके साथ तो आने से रही।"

जयन्त ने अपने चेहरे पर बेचारापन लाकर कहा, "नहीं भाभी ! यही तो मुश्किल है कि आदमी सब-कुछ जानता होता है फिर भी कुएं में गिरने से बच नहीं सकता। प्रारब्ध के लिखे को कौन मिटा सकता है। मेरे भाग्य में जिसकी चरण-वन्दना लिखी है उसकी ही करनी पड़ेगी। इसके अलावा इस सम्बन्ध में अम्पायर का रोल आपको निभाना है। आप मुझे क्यों बख्शेंगी।"

"घबराइए मत—मैं आपके लिए एक गंगी लड़की लाऊंगी जिससे कि

भाषण देने की नौबत उसकी तरफ से न आए—प्रतियोगिता में आप ही जीतें।"

"मैं यह किसी कीमत पर मान नहीं सकता कि गूंगी लड़की भी किसी की पत्नी बन जाने के बाद गूंगी और बहरी बनी रह सकती है।"

"कमाल हो गया अब तो।" कहकर याज्ञनिक महोदय कुर्सी छोड़कर खड़े हो गए और बोले, "आज तो मजा आ गया। आप देवर-भौजी में जितना चटपटा सम्भाषण होता है उसके सामने तो मनोरंजन के सारे साधन हेय हैं।"

"भाषण में तो हमारी भाभी कमाल रखती ही हैं, आज रात को जो डिनर वहस्वय अपने हाथों से तैयार करेंगी उसको खाकर आप दंग रह जाएंगे। हमारी भाभी—हमारे भैया के मन में वाया पेट यानी उदर के रास्ते से प्रविष्ट हुई हैं। मैं तो इनके पास रहकर जबरदस्त पेटू हो जाता हूं। आप अब आराम से महीना-बीस दिन यहीं ठहरिये। आप जानते हैं भाभी के आतिथ्य की तृप्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि वह बहुत दिनों तक अतिथि को अपने मन-मुताबिक खिला-पिला न लें।" इसके बाद उसने मीनाक्षी से पूछा, "क्यों भाभी, मैं ठीक कहता हू न?"

"जाइये! अब आप मुझे बनाने पर उतर आए हैं। मैं क्या खाक आतिथ्य करना जानती हूं। खाना बनाने में मुझसे ऐसा क्या आता है जो आप इन लोगों के सामने मेरी तारीफ के पुल बांधे चले जा रहे हैं? यह सब कहकर आप मेरा मज़ाक ही तो बना रहे हैं।"

"लीजिए सच्ची बात कह दी तो खुश होने के बजाय नाराज ही होने लगीं। चलिए फिलहाल तो एक ही डिमोस्ट्रेशन काफी होगा। आप शाम की चाय के साथ चीज पकौड़ा (पनीर पकौड़ा) ही खिला दीजिए सब लोगों को।"

जयन्त का प्रस्ताव सुनकर मीनाक्षी के चेहरे पर बहुत प्यारी हंसी उभर उठी और वह बोली, "क्या सीधे से पनीर पकौड़े बनाने के लिए नहीं कह सकते थे जो जमीन-आसमान के इतने कुलावे मिलाते घूम रहे थे।"

"किसी से कोई खास काम कराना होता है तो उसकी पहले जमकर प्रशंसा भी तो करनी पड़ती है। बिना बढ़िया भूमिका बांधे क्या कोई का

निकाला जा सकता है ? लोग जब किसी से कोई काम कराना चाहते हैं तो उसे यह पता ही नहीं चलने देते कि वह उससे क्या कराना चाहते हैं—बाद में जब वह खूब मुलायम हो जाता है तो चुपचाप अपना मन्तव्य उसके सामने रख देते हैं।" जयन्त ने भूमिका का दर्शन सामने रखा।

मीनाक्षी कुर्सी छोड़कर उठ पड़ी और बोली, "अच्छा बाबा, खूब भूमिका बांधते रहो। मैं चलकर पनीर पकौड़े बनाती हूं आपके लिए।"

"मेरी बहुत ही अच्छी भाभी, सुन्दर भाभी, क्या कहने हैं तुम्हारे।" कहते हुए जयन्त उठा और भाभी के साथ-साथ बंगले में दाखिल हो गया।

थोड़ी देर में ही चाय की तैयारियां होने लगीं। मीनाक्षी ने जयन्त को अकेला देखकर सरगोशी में पूछा, "नैना क्या बहुत उदास नहीं लगती है ? बोलती भी नहीं है, बस चुपचाप बैठी न जाने क्या सोचती रहती है।"

"इसके अलावा वह बेचारी कर भी क्या सकती है ? विवाह के थोड़े समय बाद ही उसके पति की एक्सीडेन्ट में मृत्यु हो गई और उसकी दुनिया उजाड़ हो गई। अब उस गरीब के लिए इस संसार में रह भी क्या गया है ?" जयन्त ने मीनाक्षी को नैना की उदासी का कारण बतलाया।

मीनाक्षी के मुंह से एक लम्बी सांस निकल गई। वह बोली, "सोचती तो मैं भी ऐसा ही कुछ थी मगर मुझे ठीक-ठीक पता नहीं था। और उसकी मां से पूछने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। यह लोग कितने भले हैं—नैना के चेहरे पर कितना भोलापन है ! पता नहीं भगवान के घर में क्या अंधेर-खाता है कि अच्छे और भले लोगों पर ही मुसीबत का पहाड़ तोड़ता है।"

भाभी रसोईघर में जाकर हीरा से बोली, "तुम जल्दी से जाकर पनीर लेकर आओ—शाम की चाय के साथ पनीर की पकौड़ियां बनानी हैं। और हां शाम के खाने में भैयाजी जो सब्जियां बनवाना चाहें वह भी इसी वक्त लेते आना।"

जयन्त से सब्जी वगैरह के बारे में पूछकर हीरा बाजार चला गया तो मीनाक्षी ने फिर नैना का प्रसंग छेड़ दिया। वह जयन्त के चेहरे पर आंखें केन्द्रित करके बोली, "मुझे तो उस बेचारी को देखकर रोना आता है—कितनी छोटी-सी उम्र है और कितना बड़ा पहाड़ टूट पड़ा है उस गरीब पर !"

"पर भाभी, किया भी क्या जा सकता है? तुम्हारा भगवान ऐसा ही विचित्र है—पता नहीं क्या ऊल-जलूल हरकतें करता रहता है। तुम उससे कभी बातें करके सारी बात साफ क्यों नहीं कर लेती कि उसके यहां यह कैसी घपलेबाजी है।"

"आपको हर बात में मसखरी सूझती है। भला भगवान किसी के साथ ऐसा अन्याय क्यों करेगा—जिसके भाग्य में जो बदा है उसे टाला जा सकता है?"

"फिर तो सारा किस्सा ही खत्म है। उस बेचारी के भाग्य में जो बदा है वही तो हुआ। जो हुआ है ठीक ही तो हुआ है। नैना ने पिछले जन्मों में जो हत्यायें और पाप किए होंगे उनका बदला उसे ठीक ही दे दिया है तुम्हारे भगवान ने।"

"जब देखो बस आप तो भगवान के पीछे लट्ठ लिए घूमते हैं। भगवान किसी के साथ अन्याय नहीं करता। आदमी अपने भाग्य को जैसा बनाता है वैसा ही तो वह बनता है। आप जहर खाकर यह चाहने लगें कि वह आपके ऊपर अमृत का असर करे तो इसे क्या कहा जाएगा?" मीनाक्षी ने गम्भीरता से कहा।

"अरे भाभी! आपको आज क्या हो गया है जो इतनी समझदारी की बातें करती चली जा रही हैं? एक-दो ही नहीं आज तो सैंकड़ों बातों में कमाल कर दिखाया आपने।" जयन्त ने मीनाक्षी को छेड़ा।

"दो-चार दिन से आप जैसे समझदारों का संग-साथ जो मिल गया है हम मूरखों को। आप जैसी ही एक और घर में आ गई तो बस समझदारी की बाढ़ आ जाएगी हमारे घर में।"

इसी समय ज्योति दरवाजे में दिखाई पड़ी। जयन्त उसे देखकर बोला, "तुम भी चली आईं—वे सब लोग वहां अकेले ही बैठे होंगे।"

"नहीं-नहीं मैं तो अभी वापस जा रही हूं, नैना के बाबूजी के लिए पानी लेने चली आई थी।" ज्योति ने अपनी बात कहकर पटिया से गिलास और मग उठाया तथा पानी लेकर बाहर चली गई।

शाम को डिनर के वक्त तक जयन्त के बड़े भाई लौट आए। उन्होंने

खाने के बाद लॉन में बैठकर याज्ञनिक महाशय से काफी देर तक बातें कीं। और यह जानकर कि वह अमरनाथ और वैष्णो देवी जाना चाहते हैं—बोले, "वैष्णो देवी तो आप कभी भी चले जाइए—ज्यादा वक्त नहीं लगेगा, और यहां से बस जाती रहती हैं। थोड़ा-सा रास्ता पैदल चलना पड़ेगा। मगर अमरनाथ जाने के लिए कुछ मालूमात करनी पड़ेगी। यहां से जम्मू और वहां से श्रीनगर जाना पड़ेगा।"

याज्ञनिक महोदय ने जयन्त के बड़े भाई साहब से मालूम किया कि क्या अमरनाथ का रास्ता लम्बा और कठिनाई-भरा है। इस पर जयन्त के भाई साहब ने बतलाया कि श्रीनगर से पहलगाम और वहां से चन्दन-बाड़ी जाना पड़ेगा, उसके बाद छड़ी शरीफ की जो सवारी मेले के रूप में जाती है उसके साथ बहुत-से यात्री जाते रहते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वह जल्दी ही मालूम करके बता देंगे कि छड़ी शरीफ का मेला कब लगेगा।

जयन्त के घर में याज्ञनिक, उनकी पत्नी तथा नैना का मन एक ही दिन में लग गया। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वह लम्बे समय से घनिष्ठ रहे हों।

चांदनी रात में कई पलंग लॉन में ही बिछाये गए और उन पर मच्छर-दानियां लगा दी गयीं। रात के समय मौसम भी काफी खुशगवार हो गया। नैना की मां और मीनाक्षी तथा ज्योति और नैना बिस्तरों पर लेटकर खूब देर तक बातें करती रहीं। जयन्त के भाई दिन-भर काम करने के बाद थककर सो गए थे और याज्ञनिक भी सो गए लगते थे।

जयन्त अपने बिस्तर पर लेटा देर तक चन्द्रमा की ओर देखता रहा। उसके दिमाग में बहुत-सी बातें गडड्मडड् हो रही थीं। कभी मस्तिष्क के नेत्रों में शकुन की आकृति उभरती थी और कभी उसके सामने नैना का स्वरूप खड़ा होने लगता था।

छह

पठानकोट पहुंचने के अगले दिन से ही जयन्त नैना के पिता के साथ घूमने निकल गया। सुबह ही सुबह लम्बी सैर का कार्यक्रम बन गया और दार्शनिक जी से जयन्त की बातें खूब जमने लगीं।

लौटकर नाश्ता किया गया और फिर शतरंज की बाजी जम गई। उस घर में एक अजीब-सी चहल-पहल नजर आने लगी गोया किसी समारोह का आयोजन हो रहा हो।

शाम को दार्शनिक महोदय ने न जाने क्या सोचकर जयन्त से कहा, "जैन्त बाबू, जरा नैना को भी तो यहां का कोई दर्शनीय स्थान दिखलाइये। फिर तो हम लोगों का पता नहीं कभी इधर आना हो या न हो। यह लड़की बेचारी बहुत अभागी है। हर समय गुमसुम और उदास ही बनी रहती है। हमारे बूते मे कोई ऐसा उपाय भी नहीं है कि इसे खुश रख सकें।"

जयन्त ने एक क्षण सोचकर कहा, "आदमी के लिए खुश रहना, महज अपने भीतर से तय नहीं हो पाता—हमारे बाहर जो स्थितियां बनती रहती हैं उनसे ही दुख-सुख होता है। नैना की उम्र खुश रहने की है मगर उसको जो दारुण कष्ट परिस्थितियों ने दिया है उनके चलते वह प्रसन्न नहीं रह सकती। यहां एक पुराना किला है—मैं कल नैना को उधर ले जाऊंगा और मेरा ख्याल यह है कि आप तथा माताजी भी साथ चलें तो अच्छा रहेगा।"

दार्शनिक जी जयन्त की बात सुनकर चुप हो गए। कुछ देर सोचने के बाद बोले, "मैं तो अधिक घूम ही नहीं सकता—आदत भी नहीं है। फिर घर से निकलने के बाद बराबर घूमता ही रहा हूं। नैना की मां को ब्लडप्रेशर की शिकायत है—बस वह भी उतना ही चलती-फिरती है जितना आवश्यक है। आप नैना के साथ बेशक अकेले घूम आयें।"

"तब ठीक है—मैं और नैना ही चले जायेंगे।" जयन्त ने ज्योति भी साथ ले जाने की बात नहीं कही क्योंकि उसे दार्शनिक के प्रस्ताव से लगा कि वह शायद जयन्त के साथ नैना को अकेले ही भेजना चाहते

कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि नैना और जयन्त घनिष्ठ क्षण कुछ ऐसी वातें करने का अवसर पा जाएं जिनसे कि नैना का मन बदल जाय। गुजराती समाज में इस तरह का खुलापन सहज रूप में भी जाता है। वहां स्त्री-पुरुषों का मिलना-जुलना बहुत गोपनीय कर नहीं रखा जाता। खुलेपन की इस दृष्टि में किसी कुविचार के लिए य नहीं होता है—बस यह सहज मानवीय धरातल समझा जाता है।

रात को एकान्त क्षण पाकर जयन्त ने नैना से कहा, "यदि आपको रे साथ वाहर निकलने में एतराज न हो तो मैं आपको यहां आसपास का कुछ दिखाने का कार्यक्रम वना लूं। और तो यहां कुछ विशेष है नहीं —पास में ही एक पुराना किला है—आप चाहें तो कुछ समय के लिए घर से वाहर निकल लें। मगर शर्त यही रहेगी कि मैं और लोगों को साथ नहीं ले जाऊंगा।"

नैना ने एकटक जयन्त का चेहरा देखा और वोली, "एतराज की तो कोई वात ही नहीं हो सकती, पर आप मेरे साथ अकेले क्यों चलना चाहते हैं?"

जयन्त ने वेझिझक कहा, "क्योंकि उसके पीछे कोई विशेष उद्देश्य नहीं है। आशय सिर्फ इतना है कि आपसे वातें करने की इच्छा होती है जो चार लोगों के साथ रहने से पूरी नही हो पा रही है। अकेले में आदमी एक होता है तो जुड़ जाने के वाद भीड़ वन जाता है। कभी-कभी भीड़ से अलग होने की इच्छा नही होती आपकी?"

"मेरी इच्छा, अनिच्छा का कोई खास महत्त्व नहीं है जयन्त वावू। आप चाहते हैं तो मैं आपके साथ चलूंगी, वाकी अकेलेपन से मुझे कोई राग विराग नहीं रह गया है। मुझे चार लोगों के वीच वैठकर भी अकेलापन मिलता है।" अपनी वात खत्म करके नैना ने एक दीर्घ निःश्वास खींची।

"कृपया आप इसे दूसरे रूप में नलें। आपका सोच जीवन की स्थिति के विषय में वहुत दूसरे तरह का लग रहा है मुझे। आप शायद यही वैठी हैं कि सारा कुछ स्थायी है और वह एक वार जैसा है—हमेशा वना रहता है। पर ऐसा नहीं है शायद! हमें वार-वार स्वयं को पड़ता है—या कहिये कि हम अनजान में ही वदलते चले जाते हैं।

ठहरा हुआ लग रहा है वह भी परिवर्तन की अवहेलना नहीं कर पाता। यही कारण है कि संसार बदलता है और उसी के अनुरूप हम भी बदलते हैं। यही बदलना तो जड़ता को तोड़ता है। आप जिस मनःस्थिति में आज रह रही हैं पहले उससे भिन्न में भी रही होंगी—आगे भी मन कुछ और स्वीकार करेगा उसे आप हठपूर्वक नकारना चाहें तो सहज नहीं रह सकतीं। इसी-लिए हमें प्रस्तुत रहना चाहिए—जो प्रस्तुत है वही समय के रथ की गति का स्वागत कर सकता है।"

"मैं उतनी बड़ी-बड़ी बातें नहीं जानती जयन्त बाबू—आप ठहरे दार्शनिक। मैं आपको पिताजी से बातें करते देखती-सुनती हूं तो मुझे यही लगता है कि आप विचारों की दुनिया में भ्रमण करते रहते हैं।"

नैना की बात सुनकर जयन्त मुक्त होकर हंस पड़ा। नैना ने अपनी आंखें ऊपर उठाकर जयन्त का मुंह देखा। क्षणांश के लिए दोनों की आंखें परस्पर मिलीं और नैना ने अपने नेत्र नीचे करके पूछा, "आप इस तरह हंसे क्यों—? क्या मैंने कोई बहुत ही मूर्खता की बात कह दी थी?"

"नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है। मुझे हंसी केवल एक बात पर आई है। आपने कहा कि मैं विचारों की दुनिया में भ्रमण करता रहता हूं। आप इसकी जगह यह भी कह सकती थीं कि मैं विचारों की दुनिया में भटकता रहता हूं। आप भ्रमण और भटकन में फर्क समझती थीं तो आपने मुझे बचा लिया अन्यथा मैं तो भटकता ही रहता।"

नैना के चेहरे पर क्षीण-सी मुस्कान उभरी और आंखों में हल्की-सी चमक आ गई। वह बोली, "मुझे शब्दों की बारीकी का कोई ज्ञान नहीं है—मैं जबान पर आने वाले शब्दों को तौलकर नहीं बोलती। फिर आप जैसे पंडित आदमी को मैं भटकन में कैसे मान सकती हूं—! मेरे पिताजी जो स्वयं गहरे मीमांसक हैं—आपका प्रभाव स्वीकार कर चुके हैं, फिर मैं तो एकदम नादान हूं आपकी प्रत्येक बात को बहुत वजनी मानती हूं।"

जयन्त ने कहा, "छोड़िए इन बातों को—सुबह ज़रा जल्दी तैयार रहिए, हम लोगों को दस बजे तक घर से बाहर निकलना है। आप स्वयं ही बाहर लॉन में आ जाइएगा—मुझे बार-बार कहना न पड़े।"

नैना इस बार मुस्करा पड़ी और पूछ बैठी, "क्या मुझे बार-बार बुला-

आपको संदेह से देखा जाने लगेगा ?"

"नहीं, वैसा कुछ नहीं है—हमारे घर के लोग मेरे विषय में पूरी तरह आश्वस्त हैं। यह बात तो मैं सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि हमें बाहर जाते देखकर और कोई पीछे न लग जाय।"

"आपकी इस गोपनीयता की मैं रक्षा करने की कोशिश ज़रूर करूंगी।" कहकर नैना वहां से उठकर चली गई।

अगले रोज जयन्त सुबह ही जल्दी तैयार हो गया और उसने मीनाक्ष से कहा, "भाभी, आज मैं नाश्ता नहीं करूंगा। नैना और मैं थोड़ी देर वास्ते बाहर जा रहे हैं।"

मीनाक्षी ने विस्फारित आंखों से जयन्त का चेहरा देखा। वह एका- एक कुछ समझ नहीं पाई कि जयन्त इस तरह नैना के साथ अकेला ही घर से क्यों जा रहा है। उसने पूछा, "खैरियत तो है? यह फैसला क्या तुम्हारी तरफ से हुआ है?"

"कैसा फैसला भाभी?" जयन्त ने उल्टा सवाल कर दिया।

"यही कि तुम नैना के साथ हम सबको छोड़कर अकेले ही जा रहे हो? पता नहीं उसके माता-पिता क्या सोचेंगे?"

"वह तो कुछ भी नहीं सोचेंगे—बस आप जो सोचेंगी आप ही सोचेंगी। उसे बाहर ले जाने का तुम कोई और अर्थ मत लगाओ। क्या लड़के लड़कियां साथ-साथ कहीं नहीं जा सकते?"

"जा क्यों नहीं सकते, मगर तुम दोनों क्या लड़के-लड़कियां हो? लड़की और एक लड़का घर से बाहर जाते समय क्या बहुवचन हो ज करते हैं?"

"और भाभी, यह बहुवचन क्या होता है—आपके मुंह से निक शब्दों को तो मैं बहुवचन ही मानता हूं।" जयन्त ने बहुवचन क विपर्यय कर दिया।

मीनाक्षी मुस्कराकर बोली, "जो जी में आये करो बाबा! पढ़े हुए आदमी को मैं कम अक्ल क्या कह सकती हूं! नैना को ले जाओ पर यह खयाल रखना कि वह हमारी अतिथि है—और

मीनाक्षी ने 'और' कहकर बात को बीच में ही तोड़ दिया क्योंकि नैना के सम्बन्ध में वह उसके विधवा होने की बात कहना नहीं चाहती थी।

जयन्त ने फिर आगे बात नहीं की। वह कमरे से बाहर निकल गया। बाहर गेट के पास उसे नैना खड़ी दिखाई दी। वह उसी ओर बढ़ गया। उसे लगा कि दार्शनिक दम्पति में इस सम्बन्ध में पहले ही विचार-विमर्श हो चुका होगा क्योंकि वह नैना को बिना विचार किए जयन्त के साथ बाहर नहीं भेज सकते थे।

गेट से बाहर निकलकर जयन्त बोला, "बोलिये किधर चलें ? किसी रेस्त्रां में चलकर कुछ नाश्ता वगैरह करें तो कैसा रहे ?"

"आप घर से निकले हैं तो आप ही जानें कि हम लोगों को कहां जाना चाहिए। मैं तो यहां के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती हूं। नाश्ता करायें या भूखा रखें यह फैसला भी आपको ही करना होगा।"

"अरे, आपने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया। सारा कुछ मुझ पर छोड़कर आपने सारी जिम्मेदारी मेरे सिर पर ही मढ़ दी। खैर, चलते हैं खरामा-खरामा घूमते हुए। पहले नाश्ता करते हैं फिर तांगा लेकर किले की तरफ चलते हैं।"

"चलिए जहां भी चलना चाहते हैं।" कहकर नैना जयन्त के साथ आगे बढ़ने लगी।

एक अच्छे रेस्त्रां में जाकर जयन्त ने कोने की मेज घेर ली और नैना से बोला, "बैठिए।"

जब वह दोनों आमने-सामने बैठ गए तो जयन्त ने पूछा, "आप क्या खाना पसन्द करेंगी ?" यहां मद्रासी नाश्ता भी उपलब्ध है, आप मसाल दोसा चाहे तो वह लीजिए। काफी भी मिलेगी। पूरी-पराठा इडली विडली सारा कुछ यहां उपलब्ध है। इस रेस्टोरेन्ट की यही विशेषता है कि यहां पंजाबी, मद्रासी, बंगली और दूसरे प्रदेशों की डिशेज खूब मिलती हैं। क्योंकि जम्मू, कश्मीर और वैष्णो देवी जाने वाले तीर्थयात्री पहले पठान-कोट में ही कयाम करते हैं।"

"खाने में मेरी कोई विशेष पसन्द नहीं है। हम लोग तो सारे प्रदेशों में चक्कर काटते हुए यहां पहुंचे हैं—आप जो भी खाना पसन्द करें दी

लीजिए। मुझे भी वहीं चल जायगा।"

"अरे वाह! इतनी इन्टरनेशनल लाइकिंग है आपकी?"

नैना ने अपनी दृष्टि जयन्त के चेहरे पर निबद्ध करके कहा, "मैंने लाइकिंग और डिसलाइकिंग (पसन्द और नापसन्द) के बीच में कभी फर्क करना ही नहीं सीखा। आदमी को जो ज़िन्दगी मिलती है वही अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। आदमी लाख कुछ चाहे, मगर उसका चाहा कितनी बार हो पाता है?"

इसी दौरान वेटर आया और मसाल दोसा और काफी का आर्डर लेकर चला गया। वेटर के जाने के बाद जयन्त ने अपनी बात को फिर वहीं से आरम्भ किया। वह अपने चेहरे पर हथेली फेरते हुए बोला, "सबसे बड़ी चीज़ तो अपने भीतर आत्मविश्वास और महत्वाकांक्षा पैदा करना होता है। जब हम जीवन में कोई चीज़ चाहते ही नहीं हैं तो उसके लिए प्रयास करने का भी प्रश्न पैदा नहीं होता। यूँ तो यही समझता हूं कि मन के शिथिल हो जाने से हमारा सारा कर्मबोध ही ढीला पड़ जाता है।" पर यह कहते-कहते वह अचानक चुप हो गया। उसे लगा कि वह जैसे दूसरों के बोले हुए शब्द दुहरा रहा है। क्या उसने शकुन को चाहा ही नहीं था जो उसको प्राप्त करने के लिए उसने कोई प्रयत्न नहीं किया? जो स्वतः घटित होता चला गया उसे उसने सिर झुकाकर क्या चुपचाप स्वीकार नहीं कर लिया था? इसके लिए क्या वह स्वयं को कभी क्षमा कर पाएगा?

जयन्त को सहसा शकुन के वह शब्द याद आने लगे जो उसने अप... विवाह के पहले उसके घर में आकर उसके कमरे में ही कहे थे। आज ... उन क्षणों का एकान्त उन शब्दों का साक्षी था, 'आपके सामने आज ही ... शायद कभी भी कुछ पकड़ लेने का आग्रह नहीं था। कोई ज़ोर भीतर ... तो आप बिना लड़े ही पराजय स्वीकार न कर लेते।'

जयन्त बिना अन्तर्दर्शन के जो कुछ बोलता चला जा रहा था— ...भूति का अहसास होते ही फिर उससे कुछ भी नहीं कहा गया। ... जयन्त के भीतर आने वाले इस आकस्मिक परिवर्तन को लक्ष्य करके ...

"आप अचानक चुप क्यों हो गए? आप कर्मबोध के शिथिल होने... कह रहे थे शायद।"

जयन्त बोला, "शब्दों के गोते दागने में रखा ही क्या है? असली बात तो यह है कि जो हम बोलते हैं उसे कितना समझते हैं—उस पर कितनी प्रतीति है हमारी—उन शब्दों के लिए कितनी बड़ी कीमत दे सकते हैं हम। यही वजह है कि दुनिया में हर कहीं बड़ी-बड़ी बातें होती रहती हैं मगर युद्ध, हत्यायें, लूटपाट, अन्याय बदस्तूर कायम रहता है। यदि शब्दों की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य उनके भीतर के सत्व को रूपायित कर सके तो दुनिया शायद कुछ दूसरे तरह की बन जाय। सम्भवतः बेहतर करना बेहतर कह देने से बहुत ज्यादा कठिन है।"

जयन्त की इस बात पर नैना की आंखों में चमक दिखाई पड़ी। उसका चेहरा भी सहज हो आया। उसने मधुर स्वर में पूछा, "जयन्त बाबू, आप जब इतना कुछ जानते-समझते हैं तो शब्दों को बिना भीतरी आशय के थोड़े ही बोलते होंगे?"

"शब्द को कर्म से सिद्ध करना पड़ता है नैना देवी! शब्द मामूली चीज तो नहीं है—वह साक्षात ब्रह्म है। कर्म में जितना कुछ रचनाधर्मी—रचनाजीवी दिखाई पड़ता है, वह शब्द के समानान्तर ही तो चलता है। दोनों में तालमेल न हो तो सारा कार्य-व्यापार ही उलट-पुलट हो जाता है। सिद्धि के अभाव में शब्द विदेह है यानी उस स्थिति में वह प्रेत जैसा कर्महीन और अशरीरी हो उठता है। आप तो जानती ही हैं कि प्रेत को सिद्ध करने की क्रिया शब्द को सिद्ध करने से कहीं ज्यादा कठिन है और उसे उलटबासी ही मानना चाहिए।"

नैना मुग्ध भाव से जयन्त का गम्भीर चेहरा देखती रही। उसे लगा कि उसके सामने बैठा सुदर्शन युवक साधारण चेतना के स्तर से कहीं बहुत ऊपर विचरण कर रहा है। उसके भीतर जो एक गहरा आत्मबहिष्कार छिपा बैठा था वह धीरे-धीरे मिटने लगा। वह सहज परिहास के साथ बोली, "आप चेतना के सातवें आसमान से अगर थोड़े समय के लिए नीचे उतर आएं तो सामने रखा दोसा और काफी का कुछ जन्म सुधर जाए।"

"ओह! मैं न जाने कहां भटक गया था। निरंकुश चिन्तन की यही तो खराबी होती है—वह कहीं भी ठहराव नहीं पाता—बस बेलगाम घोड़े जैसा दौड़ता चला जाता है।"

"वेलगाम ही सही—है तो आपके पास। हमारे जैसे काठ-पत्थरों के पास तो वह भी नहीं है। खैर कुछ देर के लिए ऊंची-ऊंची वातों से अलग हटकर यह दोसा खा लीजिए जिसकी आप प्रशंसा करते हुए विभोर हो रहे थे।"

"पहले आप शुरू कीजिए—जब आप इसकी प्रशंसा में विभोर हो जाएंगी तो मैं भी खाना शुरू कर दूंगा।"

नैना ने काफी का प्याला अपने करीव सरकाकर कहा, "आप तो हर समय सोचते ही रहते हैं शायद! मैंने कोई इतना सोचने वाला आदमी अभी तक नहीं देखा।"

"दुनिया में जो तरह-तरह की वीमारियां हैं उनमें सोचना सवसे खतरनाक वीमारी है। जो निरन्तर उग्र होती चली जाती है और इसको दूर करने का जितना ही ज्यादा इलाज किया जाता है यह उतनी ही स्वस्थ होती जाती है।"

"आप वीमारी के भी स्वस्थ होते चले जाने की बात कर रहे हैं?"

"क्यों, जब स्वस्थ वीमार हो सकता है तो वीमारी और अधिक पुष्ट और अधिक स्वस्थ नहीं हो सकती?" जयन्त ने कहा, "वात कहने का ढंग ही तो है।"

बातें करते-करते दोनों ने नाश्ता खत्म किया तो पौन बज रहा था। जयन्त ने कानों को छूकर कहा—"देखा आपने, मैंने वेमतलव की वातों में भटककर कितना समय गारत कर दिया। अव किले की तरफ निकल गए तो घर लौटने में अच्छी-खासी शाम हो जाएगी।"

"तो फिर छोड़ दीजिए किला-दर्शन। मेरी वैसे भी इन किले-महलों को देखने में कोई खास दिलचस्पी नहीं है। इस किले को देखने का अगर कोई विशेप माहात्म्य है तो फिर वाकी सवको इससे क्यों वंचित करते हैं। कलवल में आप सव लोगों को साथ लेकर आ जाइएगा।"

"हां यह तो हो सकता है, मगर फिर हम लोग क्या करें? क्या अभी से वापस लौट चलें? मेरा खयाल है शायद घर पर तो हमारी प्रतीक्षा उतनी ज्यादा हो नहीं रही होगी।"

"घर पर तो प्रतीक्षा रहती ही है। जब आदमी घर से निकलता है तो

फिर उसका लौटना बाहर की परिस्थितियों पर निर्भर करता है, मगर उसके घर से निकलते ही लौटने का इन्तज़ार तो शुरू हो ही जाता है।" नैना के इन शब्दों से यह स्पष्ट था कि वह घर लौट चलने की जल्दी में नहीं है। उसे जयन्त के साथ रहने में कोई आपत्ति नहीं थी।

जयन्त, नैना के मन की बात समझकर बोला, "तो फिर ऐसा करते हैं हम लोग एक फिल्म देख डालते हैं आज। मैं वैसे तो सिनेमा नहीं जाता, पर जब आप साथ हैं तो इस मुश्किल काम को भी करके देख ही लिया जाय।"

"सिनेमा देखने में मेरी भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रहती है। जब साथ चलने की बात होती है तो चल देती हूं बस।"

"साथ निभाने के लिए ही सही—चलिए, हम लोग एक फिल्म देख डालते हैं। हां, एक बात के लिए अपना दिल मजबूत बनाए रखिए कि फिल्म भी मनुष्य के भाग्य की तरह है जिसे कोई नहीं जानता कि उसमें क्या लिखा है। आप सिनेमा हाल पर पहुंचें और पता चले 'खून की टक्कर' या 'हिम्मत-वाली' फिल्म लगी हो, जो भी हो, चलकर देख ही लेते हैं।"

जयन्त जब नैना को लेकर सिनेमा हाल पर पहुंचा तो यह देखकर प्रसन्न हो गया कि वहां 'यात्रिक' फिल्म लगी थी। इस फिल्म की उन दिनों बेहद चर्चा थी। इसमें पूरे देश के पावन तीर्थों की यात्रा का विवरण था और फिल्म में काम करने वाले अभिनेता भी ठीकठाक थे।

जयन्त खिड़की पर जाकर टिकट ले आया और नैना से बोला, "देखिए क्या तकदीर है। आप सारे तीर्थों की यात्रा करती घूम रही हैं और हमारे जैसे क्षुद्र पापियों के लिए तीर्थ-यात्राएं बैठेबिठाए घर में ही आ पहुंची।"

नैना ने भी फिल्म का नाम सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की। उसने भी इस फिल्म के विषय में सुन रखा था लेकिन यह फिल्म उसके शहर में अभी तक नहीं लगी थी।

दोनों हाल में जाकर बैठ गए। बालकॉनी एकदम खाली-सी ही थी। नैना और जयन्त के अलावा वहां एक जोड़ा और बैठा हुआ था। फिल्म शुरू होने से पहले देर तक गाने बजते रहे फिर सरकारी योजनाओं का सिल-

चलता रहा। हाल में पहुंचने के कोई पौन घंटा बाद यात्रिक फिल्म
...म हुई।

फिल्म में दिखलाया गया था कि एक तरुणी एक प्रौढ़ा के साथ पवित्र
...नों की यात्रा पर निकली है। मार्ग में नये-नये तीर्थयात्री मिलते चले
...ते हैं और ऐसे अवसर भी आते हैं जब उनमें से कुछ बिछुड़ जाते हैं। यह
...हयात्री एक-दूसरे से परिचित होने के बाद परस्पर घनिष्ठता के सूत्र में
बंधते चलते हैं। जब इनमें से कोई किसी कारण से बिछुड़ जाता है या आगे
जाने वालों का साथ नहीं दे पाता तो सब उसकी अनुपस्थिति अनुभव करते
हैं। उसके विषय में वार्तालाप करते हैं। ऐसे भी अवसर आते हैं कि जो
सहयात्री पिछली बार कहीं बिछुड़ गए थे वह पुनः मिल गए हैं। कहीं किसी
पहाड़ी चट्टी पर कोई-कोई औघड़ भी मिल जाता है और इस प्रकार यह
यात्रा अविराम चलती रहती है। इस यात्रा में किसी धाम से कोई युवक
भी इन तीर्थयात्रियों के साथ हो लेता है। प्रौढ़ा उस युवक के प्रति ममत्व
का भाव अनुभव करने लगती है और युवती भी हठात् उसकी ओर
आकर्षित होती है। दोनों के बीच एक अनकही-अनबोली अन्तरंगता
स्थापित हो जाती है। फिल्म देखते-देखते नैना और जयन्त दोनों ही भीतर
से अनुभव करने लगे कि यह चलचित्र उन दोनों को दृष्टि में रखकर ही
बनाया गया है। नैना रोमांच की अनुभूति में डूब गई और जयन्त भी
अपना प्रतिरूप फिल्म के सहयात्री युवक में देखने लगा।

फिल्म के अन्त में दिखलाया गया था कि किसी पहाड़ी चट्टी पर यात्री
ठहरे हुए हैं और रात्रि के सघन क्षण हैं। युवक जाग रहा है। युवती रा...
की कंपनकारी ठंड में सोते-सोते ही कांप उठती है। युवक अपने स्थान...
उठता है और युवती के ऊपर आहिस्ता से अपना गर्म शाल डालकर च...
से बाहर निकल जाता है। शायद युवती के प्रति बढ़ते हुए अनुराग...
परिणति का विचार करके वह चुपचाप निकल जाने में ही औचित्य मा...
है।

जिस क्षण वह युवक दबे पांव चट्टी से बाहर जा रहा होता है...
नहीं नैना के सर्वांग में कैसी विचित्र शीत लहर दौड़ी कि उसका...
जयन्त से छिपा नहीं रहा। जयन्त ने एक भी शब्द कहे बिना...

हथेली अपने हाथ में जकड़ ली और सामने गुजरते दृश्य के प्रति आंखें बंद कर लीं।

फिल्म खत्म होने के बाद जब नैना और जयन्त बाहर आये तो शाम हो चुकी थी। वह दोनों चुपचाप घर की ओर लौटने लगे। उन दोनों के मन में पता नहीं कैसा वात्याचक्र उमड रहा था। दोनों लगभग एक ही बात सोच रहे थे कि उन दोनों के बीच घनिष्ठता और प्रगाढ़ता के जो क्षण अनायास आ जुटे हैं पता नहीं उन पर कब किस क्षण पूर्ण विराम लग जाय। जयन्त और नैना दोनों को ही लगा कि फिल्म में दिखाया जाने वाला समस्त यात्रा-व्यापार उनके जीवन में घटित होता चल रहा है और अब कभी भी समापन का क्षण आ सकता है।

आधा रास्ता पार हो जाने के बाद एकाएक जयन्त को होश आया और उसने नैना से पूछा, "आपको फिल्म कैसी लगी?"

नैना ने अपनी आंखें उसकी आंखों में अनजाने ही स्थिर करके पूछा, "मेरे मन की बात पूछ रहे हैं या अपने मन की?"

"दोनों ही की जानता हूं पर पता नहीं फिर भी क्यों पूछ रहा हूं? कभी-कभी क्या ऐसा नहीं होता कि आप भीतर ही भीतर जो जी रहे होते हैं उसका बाहरी साक्ष्य पक्के तौर पर पा लेना चाहते हैं। सहानुभूति भी भीतर ही भीतर कहां संभाली जाती है—उसे भी किसी की 'हां' की मुहर चाहिए।"

"अब मैं यह सोच रही हूं कि यह फिल्म न देखी होती तो ज्यादा अच्छा था। देखते हुए तो उसमें अन्त तक प्राण अटके ही रहे और अब तो वह बिलकुल ही निकल गए। स्वयं का स्वरूप देखने के लिए आदमी का मन छटपटाता रहता है, पर उसी स्वरूप से साक्षात्कार करने के बाद [illegible] उद्विग्नता होने लगती है। उस क्षण ऐसा लगता है—यदि [illegible] होता तो क्या जाने वाला था।"

"मगर भवितव्य को देखने-सुनने की उत्सुकता भी तो कुछ कम नहीं होती है हालांकि उसे जान लेने के बाद कुछ बदल तो नहीं जाता है। [illegible] मे आदमी की कठिनाई यह होती है कि वह कभी निश्चित तौर पर [illegible] नहीं जानता है कि वह क्या चाहता है। हम स्वयं नहीं जानते [illegible]

सर पर वाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर हमारा आचरण क्या
गा।"

"आप ठीक ही कहते हैं। हम सब अस्तित्व के स्तर पर बहुत लाचार
हैं।" नैना ने कहा।

"हमारे इच्छित का अस्वीकार कहीं से भी हो वह हमें कष्ट तो देता
ही है और यही हमारे अस्तित्व की विवशता है।"

बातें करते-करते नैना और जयन्त घर के दरवाज़े पर जा पहुंचे।
शाम धीरे-धीरे रात में बदलने लगी थी और सब लोग बाहर लॉन में बैठे
चाय पी रहे थे। जयन्त सबको बाहर बैठे देखकर एक क्षण के लिए
झिझका। उसने नैना की ओर देखा मगर उसके चेहरे पर किसी प्रकार
की झिझक नहीं थी। मानो वह किसी दूसरी दुनिया में विचरण कर रही
थी।

दोनों लान में पहुंचे तो ज्योति ने नैना से पूछा, "कहां-कहां घूम
आईं? किला कैसा लगा? आज तो दिन में बेहद गर्मी थी—घूमने में बहुत
कष्ट हुआ होगा?"

"कोई कष्ट नहीं हुआ बल्कि जयन्त बाबू जैसे फिलासफर से बहुत कुछ
जानने को मिला। आपके भैया तो बहुत ही गहरी बातें सोचते हैं और
किसी अलग दुनिया में रहते हैं।"

याज्ञनिक बोले, "हम साधारण लोग उस दुनिया की ज़रा-सी झलक
भी पा जाते हैं तो कृत कृत्य हो जाते हैं। दैनिक जीवन की आपाधापी
मनुष्य की सारी सोच पर गर्द डाल देती है।"

जयन्त मीनाक्षी के पास आकर बोला, "भाभी, आज शाम के
में आप क्या बनवा रही हैं—मैंने तो नैना को भी भूखा ही मार
आज।"

"अगर आपने जाने से पहले कह दिया होता तो मैं कुछ-न-कुछ
वस्त कर ही देती। लेकिन आप तो जाने की इस कदर उतावली
खाने-पीने का ध्यान ही किसे था?"

जयन्त ने मीनाक्षी के चेहरे का भाव जानने के लिए ज़रा घूम
कि कहीं वह व्यंग्य में तो यह सब नहीं कह रही हैं। इस तरह

साथ आकस्मिक ढंग से बाहर निकलने पर घर के लोगों को विस्मय तो हुआ ही होगा।

दार्शनिक की पत्नी ने कहा, "भई हमें भी बतलाओ तुम दोनों ने आज क्या कुछ देखा है। अगर यहां कुछ देखने की जगह है तो कल हमको भी ले चलना। आज भैया (जयन्त के बड़े भाई) जी ने कहा है कि दो-तीन रोज में उनकी जीप जम्मू जा रही है—हम लोग उनके साथ ही निकल जाएंगे। बस वहां से बस से कटरा चले जाएंगे और फिर वैष्णो देवी होकर जम्मू से ही अमरनाथ चले जाएंगे।"

जयन्त ने कहा, "भाई साहब की जीपें तो जम्मू श्रीनगर जाती ही रहती हैं। आप लोग कुछ दिन यहीं आराम कीजिए। आपने तो सारे देश की तीर्थयात्राएं कर डाली हैं, अब थोड़ा विश्राम भी तो जरूरी है।"

"दो दिन कुछ कम तो नहीं होते हैं। आप लोगों के साथ रहकर तो समय इतनी तेज़ गति से भागता है कि उसका कुछ पता ही नहीं चलता है। और ज्यादा रहना हो गया तो मोह-ममता बढ़ती चली जाएगी। और फिर आप जैसे भले लोगों को छोड़कर जाते हुए अपार कष्ट होगा।" दार्शनिक महोदय की पत्नी ने जयन्त की ओर मुंह करके कहा।

"इसीलिए तो कहता हूं कि आप यहां इतने दिन जरूर टिकें जितने दिन रह जाने से मोह-माया का फंदा कट जाता है। दो-दिन की बजाय आपको यहां दो माह तो ठहरना ही चाहिए।" जयन्त ने हंसते हुए कहा।

"फिर भी तो जाना होगा ही कभी। तुम लोगों का स्नेह और हम लोगों के प्रति लगाव हमें हमेशा ही यहां की याद दिलाता रहेगा। नदी-नाव संयोग ही तो है यह दुनिया। राह-बाट चलते जो मिल जाते हैं कभी-कभी वही अपनों से भी ज्यादा प्यारे हो उठते हैं, जबकि अपने सगे सहोदर आंखें चुराते हैं।" दार्शनिक ने अपने मन की बातें गम्भीरतापूर्वक कह डालीं।

जयन्त बोला, "ठीक है देखा जाएगा। जाने-वाने की बातें अभी तो रहने ही दीजिए। फिलहाल तो यह मुद्दा सामने है कि मीनाक्षी भाभी आज रात के खाने में क्या खिलाने जा रही हैं। मुझे इस समय पेट का मुद्दा ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नज़र आ रहा है।"

सात

एक-एक करके कई दिन निकल गए और इन दिनों के बीतने का किसी को भी अहसास नहीं हुआ। याज्ञनिक महोदय और उनके परिवार के सभी लोग इतने घुल-मिल गए मानो सदा से वहीं उसी घर में रहते चले आए हों। यह बात तो सबके दिमाग से निकल ही गई कि जो लोग चन्द दिन के लिए मेहमान होकर आये हैं उन्हें जल्दी ही इस घर से चले जाना है।

एक सुबह बहुत जल्दी उठकर जब जयन्त घूमने जा रहा था तो उसने बाहर गेट पर नैना को खड़े हुए देखा। अभी तक घर में कोई भी नहीं जागा था। जयन्त ने सोचा था कि वह बिना किसी प्रकार की आहट किए घर से निकल जाएगा और सब लोग जब तक उठेंगे वह लौट भी आएगा। वह रसोई में चुपचाप चाय बनाने गया था शायद उसी समय नैना खटर-पटर सुनकर जाग गई थी। वह भी चुपचाप तैयार होकर जयन्त के साथ बाहर निकलने को तैयार हो गई थी।

जब वह दोनों घर से बाहर निकलकर बिलकुल एकान्त में नहर के किनारे पहुंच गए तो जयन्त ने कहा, "मुझे बहुत अफसोस है कि मैंने आपकी नींद खराब कर दी। मुझे सुबह बहुत जल्दी जगने का पुराना मर्ज़ है—हमेशा उठकर अपने लिए एक प्याला चाय तैयार करता हूं और फिर तैयार होकर घूमने निकल पड़ता हूं। और रोज़ जितनी सावधानी शायद आज नहीं बरत पाया इसीलिए आपको जागना पड़ गया। इस दुष्टता के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूं।"

"पहले तो आप मुझे जो यह हर समय 'आप-आप' कहकर सम्बोधित करते हैं इसके लिए माफी मांगिए। अब से आगे आप मुझे जितनी मर्तबा भी आप कहकर सम्बोधित करेंगे मैं आपके ऊपर अच्छा-खासा जुर्माना करती चली जाऊंगी। यही नहीं, उसकी बाकायदा वसूली भी होगी। दूसरी बात यह है कि मैं स्वयं बहुत जल्दी जगने की अभ्यस्त हूं। जिस समय आप लॉन से बिस्तर छोड़कर भीतर आते थे मैं भी जाग जाती थी, मगर यही सोचकर चुपचाप लेटी रहती थी कि कहीं आपके एकान्त भ्रमण में बाधा तो नहीं पड़ जाएगी। पर आज मैंने तय किया कि जो भी होगा देखा-भुगता

जाएगा—मैं आपके साथ घूमने जरूर आऊंगी। पता नहीं मेरा यह दुराग्रह आपको कैसा लग रहा होगा।"

"वैसा ही लग रहा है जैसा कि पुरानी कहावत में कहा गया है—एक से भले दो। अब आप साथ आ ही गई हैं तो घूमने का आनन्द अनायास कई गुना बढ़ गया है।"

जयन्त और नैना घूमते-घामते काफी दूर निकल गए। बस्ती के अंत पर एक घने वृक्षों का कुंज था। दोनों उसमें जाकर हरी घास पर बैठ गए और इधर-उधर की बातें करने लगे। जयन्त ने नैना से पूछा, "आपको—" फिर यकायक उसे 'आप' संबोधन की याद आ गई तो वह बोला, "माफ कीजिए, यहां रहना कैसा लग रहा है? हम लोगों के लिए तो आप सब लोगों का साथ बड़ी भारी नियामत बन गया है।"

जयन्त का यह प्रश्न सुनकर नैना एकाएक उदास हो उठी। वह कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठी लॉन की घास पर दृष्टि जमाये कुछ सोचती रही और फिर धीरे से कहने लगी, "जिस दिन आप ट्रेन में मिले थे, बिलकुल भी ऐसा महसूस नहीं हुआ था कि हम लोगों के बीच प्रगाढ़ता का भी कोई क्षण आ सकता है। यह सब इतना आकस्मिक ढंग से हुआ कि इस पर मेरा कोई भी वश नहीं रहा। चलिए साथ तो किसी का भी हो सकता है, पर यह तो मैं कभी सोच ही नहीं सकती थी कि मैं आपके जीवन को पढ़ने की कोशिश करूंगी।"

नैना की यह बात सुनकर जयन्त एकाएक चौंक उठा। उसने नैना का चेहरा ध्यान से देखा और कुछ सोचते हुए पूछ बैठा, "आपने मेरे जीवन को पढ़ने की कोशिश भी की है? फिर तो आप शायद बहुत कुछ जान भी गई होंगी।"

"क्यों नहीं? सारा कुछ जानने का दावा तो मैं नहीं कर सकती। मैं ही क्यों ऐसा दंभ तो किसी को भी नहीं करना चाहिए, मगर मैं बराबर देखती चली आ रही हूं कि आपका प्रयास निरन्तर यही है कि आप अपने आपसे भागते चले जाएं। और इतनी दूर तक भागें कि फिर किसी की नज़र में न आएं। पर आप स्वयं को तरह देने की कोशिश में यह भूल रहे

स्वयं से कोई बहुत दूर नहीं जा सकता। आप कहीं भी चले जाएं
ो क्षण आप जी चुके हैं उसका लेखा-जोखा हर कहीं, हर समय आपके
न में शिलालेख की मानिन्द अंकित रहेगा। स्वयं से बेगाना हो जाना
ा ही आसान हुआ होता तो हम सब निर्द्वन्द्व अनुभवातीत हुए होते।
ससे भागकर आप यहां-वहां भटक रहे हैं वह आपके अंतर्मन के निविड़-
प्रकोष्ठ में पूर्ण सुरक्षित है। आप उसे किसी भी तरह निष्कासित कर
ें या निर्वासन दे सकें यह संभव नहीं जयन्त बाबू!"

जयन्त नैना के चेहरे पर अपलक दृष्टि जमाये कुछ पढ़ने की कोशिश
रता रहा और फिर कहीं दूर पहुंच गया। कई क्षणों तक उसे आसपास
के वातावरण की कोई सुधि ही नहीं रही। जब उसे होश आया तो उसने
देखा नैना कातर भाव से उसका चेहरा निरख रही है। जयन्त ने लम्बी
सांस खींचकर कहा, "पता नहीं क्या सच है? हो सकता है नैना, जो तुमने
कहा है वही ठीक हो। मैं आत्म-निर्वासन में भी नहीं जी सकता। आधा-
अधूरा भोग मनुष्य को अतृप्ति के अतिरिक्त दे भी क्या सकता है?"

"अतृप्ति को काटने के लिए आप क्या कर रहे हैं मुझे मालूम नहीं
है, पर मैं एक बात कह सकती हूं—अस्वीकार का आग्रह लेकर चलने में
कोई उपलब्धि नहीं है।"

"मेरे सामने स्वीकार और अस्वीकार का क्षण कभी स्पष्ट रूप से
आया ही नहीं है। यदि ऐसा क्षण संयोग से कभी आ गया तो मैं नकार का
वरण नहीं करूंगा यह मैं तुमसे कह रखता हूं।"

"मैं शायद आपके इस निर्णय को जानने या देखने के लिए सामने न
रहूं, पर मुझे प्रसन्नता इसी बात से होगी कि आपको जी लेने का अवसर
चूक जाने का क्षण नहीं आया। आपसे जो सम्पर्क हुआ है, दिनों के हिसाब
से तो वह कहीं रेखांकित ही नहीं हो सकता पर उसे अनदेखा करना
असंभव ही है। वह लगभग ऐसा ही है जैसे कोई मादक पेय एक बार
तृषित होंठों से लगाकर फिर सहज ही हटाना सहज संभव नहीं रह जाता।
कल पिताजी कह रहे थे, 'इन लोगों से हटना पड़ेगा।' मैं तो यह सोचकर
कांप उठती हूं पर अमरनाथ की यात्रा पर जाने का समय भी तो नहीं
चूकना चाहिए। मां ने उनकी बात का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया प

पिताजी की आंखों में छाई हुई चिंता ने मुझे एक प्रकार से हिलाकर ही रख दिया। इतनी ममता और चिंता मैंने उनके स्वभाव में पहली बार ही देखी है। बड़े-से-बड़े दुख में मैंने अपने पिताजी को कातर होते नहीं देखा है, पर पता नहीं इस बार वह आपके परिवार में रहकर क्यों ऐसा अनुभव कर रहे हैं। वह कुछ कहना चाहते हैं—मुझसे बार-बार किसी विषय पर बातें करना चाहते हैं मगर फिर चुप लगा जाते हैं। कोई चीज ऐसी जरूर है जो उनके मन में बहुत गहरे में पैठ गई है और उनको निरन्तर परेशान कर रही है।"

"क्या आप—नहीं-नहीं—तुम इस बात का अनुमान नहीं लगा सकती कि वह क्या बात हो सकती है?"

"मैं ठीक-ठीक कह नहीं सकती। हां इतना ही कह सकती हूं कि वह जब से यहां आए हैं बराबर कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं—पता नहीं कौन-सी झिझक उन्हें रोक देती है।"

"हो सकता है नैना, वह तुम्हें लेकर कुछ सोच रहे हों।"

"मुझे लेकर तो वह बराबर किसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं। मेरी वजह से ही तो वह अपना सारा काम-धाम छोड़कर महीनों से बाहर घूम रहे हैं।"

"मैं कुछ जानने की कोशिश करूं तो कैसा रहेगा—वही मुझे कुछ ऐसा-वैसा तो महसूस नहीं करेंगे?" जयन्त ने झिझकते हुए पूछा।

"आपके प्रति उनके मन में जितना ममत्व भर गया है उसे देखते हुए तो मुझे नहीं लगता। आपके बारे में तो वह मुझसे बार-बार कहते रहते हैं—कितनी थोड़ी उम्र का नौजवान है, मगर धीर-गंभीर प्रकृति गजब की पाई है। इसमें दूसरों का दुख समझने की गजब की सूझबूझ है। यदि ऐसा न होता तो मुझे उस रोज आपके साथ अकेले में चले जाने को क्यों कहते? क्या जबरदस्त विश्वास के बिना लम्बे सम्पर्क के अभाव में कोई वैसा करता है?"

"वह बात तो मैं उनसे बातें करके पहले दिन ही जान गया था। देखो मैं कोशिश करूंगा कि वह मुझे अपने विश्वास में लेकर स्वतः कहें।" इसके बाद जयन्त ने इस विषय को बदलते हुए पूछा, "नैना,

अभी थोड़ी देर पहले जो यह कहा था कि मैं स्वयं से भाग रहा हूं और खुद को तरह देने की कोशिश कर रहा हूं—इसे क्या तुम और अधिक स्पष्ट नहीं कर सकतीं ?"

"इसमें स्पष्ट करने को क्या है ? इतनी कम आयु का आदमी अपनी उम्र को एकदम पीछे छोड़कर जब वैरागियों जैसा व्यवहार करने लगता है तो वह कहीं गहरा आघात लिए हुए ही तो होता है। आपके मुंह से जो कुछ सुनती चली आ रही हूं उस दिन से बराबर यही मान रही हूं कि कहीं कुछ ऐसा घटित हो चुका है जो आपके भीतर निरन्तर आंदोलित होता रहता है।"

"तुम यह बात किस आधार पर कह सकती हो ? मैं बराबर बाहर के कार्यव्यापारों में पूरे ऊधम के साथ लगा रहता हूं। कोई भी क्षण तो ऐसा नहीं होता जिसमें मैं बोइसट्रस (उमंगापित) न रहता हूं। आई एम सच ए नाइस प्लेफुल बोय (मैं तो अच्छा खिलंदरा लड़का हूं)।"

"ओ हो क्या कहना नाइस प्लेफुल बोय का। हमेशा तो धीर गंभीर बूढ़ों जैसी बातें करते रहते हैं। मेरे साथ रहने से ज्यादा आप मेरे पिताजी के साथ वार्तालाप करने में सहजता अनुभव करते हैं। बताइए है यह बात कि नहीं ?"

"आपके पिताजी से मैं वास्तव में बहुत प्रभावित हूं। उनकी आकृति-प्रकृति मेरे मन को सहजता और सरलता प्रदान करती है जबकि आप मेरे मन को सुगंध का संस्पर्श देती हैं।"

नैना ने जयन्त की आंखों में झांककर गहरे स्वर में पूछा, "क्या सच बोल रहे हैं आप ?"

"शब्दों में क्या यह बात बतलाई जा सकती है ? फिर शब्दों से खिलवाड़ करने का मेरा स्वभाव भी नहीं है। जो मैं कहता हूं वह अभि-व्यक्ति की भूख के कारण ही सम्भव हो पाता है। जैसे बिना भूख के आदमी भोजन करता है तो अपच के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता —इसी प्रकार गहराई तक अहसास किए बिना जो भी शब्द बोला जाता है वह मन में जाकर बेवजह जगह घेरता है—कोई स्वास्थ्य तो दे नहीं पाता।"

"पर लोग निरन्तर बोलते तो रहते ही हैं।" नैना ने कहा।

"काश लोग चुप रहना सीख पाते!"

जयन्त की इस टिप्पणी पर नैना ने कहा, "लेकिन दुनिया में शब्द के अलावा तो कुछ है ही नहीं। सारा कुछ तो शब्दों से ही तय होता है। हम मनुष्य वर्तमान में जीवित ही कितना रहते हैं? जिस क्षण में जी रहे होते हैं उसका धरातल या तो भूतकाल होता है या भविष्यत्। हर कोई स्मृतियों का पुलिन्दा मन की बगल में दबाए घूमता नजर आता है। सारे संबंध पूर्वा पर संबंधों के मोहताज हैं। नये सिरे से आप जी सकें जिसमें अगला पिछला कोई कर्जा चुकाना बाकी न रहता हो—ऐसा क्या कभी होता है?"

"मनुष्य को प्रकृति ने यही तो सबसे बड़ा अभिशाप दिया है कि वह गुजरे क्षणों का लेखा-जोखा रखने से मुक्त न रह पाए। पशु-पक्षी और यहां तक कि प्रकृति स्वयं इस अभिशाप से पूर्ण मुक्त है। यही कारण है कि मनुष्येतर प्राणियों में पूर्वापर राग-द्वेष नहीं दीख पड़ता। मोह-ममता की वहां भी कोई कमी नहीं है किन्तु वह कभी बंधन नहीं बनती। सारा कुछ इतना क्षणिक और सरस है कि वह किसी के मन में गांठ नहीं बनने देता।"

"प्रकृति ने मनुष्य के साथ यह अन्याय क्यों किया है भला?" नैना ने उत्सुकता व्यक्त की।

"मैं यह तो नहीं जानता—शायद कोई भी ठीक-ठीक नहीं जानता होगा, पर मैं इस दुहरेपन को हर क्षण चरितार्थ होते देखता हूं। आप देखती हैं कि पेड़-पौधों पर एक निश्चित समय पर पतझर आ जाता है—सारे पुराने पत्ते झर जाते हैं। पिछला कुछ भी बाकी नहीं रह जाता—नये पत्तों, नये फूलों, नये बौर और नये फलों से पेड़-पौधे भर उठते हैं—किसी वृक्ष को यह याद नहीं रहता कि पिछले वर्ष जो पत्ते और फूल उस पर महके थे वह कहां चले गए। वह उड़कर खाद बन गए या उन्हें भाड़-भट्टी में झोंक दिया गया इसका कोई भी हिसाब पेड़ के पास नहीं रहता। इसके विपरीत हम मनुष्यों को देखिए। कल किसने मुझसे क्या कहा था—कल मैंने कि[illegible] दिया था—कल मेरे सामने कैसा सुनहरा संसार था. इस सबक[illegible]

लेखा-जोखा जुटाने में तन-मन की सारी शक्ति खप जाती है। यही नहीं मनुष्य का समस्त आचरण इन्हीं स्मृतियों को आधार बनाकर निश्चित होता है !"

"पर क्या इन सुखद अथवा दुखद स्मृतियों से छुटकारा पाने का कोई भी उपाय नहीं है ?"

"मैं कुछ कह नहीं सकता। जो इस स्मृतिजन्य संसार से मुक्ति पाने के मुमुक्षु हैं वह भी संसार छोड़कर किसी और संसार की खोज में निकल जाते हैं। गुफाओं-पहाड़ों-जंगलों में रमकर तपस्या करते हैं—समाधि लगाते हैं—कठिन साधना करते हैं। उनका मुख्य युद्ध अपने मन के ही विरुद्ध तो होता है। वह मन को सारे संकल्पों-विकल्पों से खाली करके मोक्ष-मुक्ति-स्वतंत्रता और भी न जाने क्या-क्या पाना चाहते हैं। पर प्रश्न यह फिर भी अपनी जगह पहाड़ की तरह अडिग खड़ा रह जाता है कि क्या वे वास्तव में मन को सब कुछ से धो-पोंछकर मुक्त कर पाते हैं ? हज़ारों वर्षों तक तपस्या करने वाले ऋषि-मुनि तक मन के हाथों क्षण-भर में नष्ट होते रहे हैं।"

"भावनाशून्य हो जाने पर मनुष्य में आखिर मनुष्य का रह क्या जाएगा ?" नैना ने अपनी शंका जयन्त के सामने रखी।

"पता नहीं क्या रह जाएगा। भावनाशून्य तो कोई रह ही नहीं सकता। जड़ता और पागलपन तक में भावना का समावेश किसी-न-किसी रूप में दीख पड़ता है। बस यही कहा जा सकता है कि संसार का वैचित्र्य अलक्ष्य है।"

"इसी विचित्रता को प्रकृति ने निर्मित किया है। मनुष्य को उसने जैसा बनाया है इसके पीछे उसका कोई गंभीर उद्देश्य तो अवश्य ही रहा होगा।" जयन्त के सामने नैना ने एक नया दृष्टिकोण रखा।

जयन्त बोला, "पल-पल परिवर्तित प्रकृतिवेश कविता में कविवर पंत ने यही बात तो कही है। यह परिवर्तन महज प्रकृति में ही नहीं देखने को मिलता बल्कि हम मानवों की प्रकृति में यह क्षण-क्षण बदलता स्वरूप हर कहीं देखा जा सकता है। असल में प्रकृति की चंचलता और गंभीरता दोनों ही हमारे भीतर मौजूद हैं।"

"घर-परिवार को बनाये रखने के पीछे क्या उद्देश्य हो सकता है? हम तो सब कहीं यही देखते हैं कि यह एक लम्बी व्यर्थता का चक्र है जो मनुष्य को सुख कम क्लेश अधिक देता है।" नैना ने जयन्त को कुरेदा।

"लाखों वर्षों का लम्बा सिलसिला है इसके पीछे—मानव जब पृथ्वी पर आया था तो यह घर-परिवार नगर-ग्राम कुछ भी तो वह साथ लेकर नहीं आया था। हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि पशु से अलग कोई विवेक तब भी मनुष्य के पास अवश्य रहा होगा। कालान्तर में तो उन्हीं सारी प्रवृत्तियों का विकास होता रहा है जो मनुष्य की मूल चेतना और संस्कार में निहित रही होंगी।"

बातें करते-करते काफ़ी समय निकल गया था। जयन्त और नैना गम्भीर वार्तालाप में इस तरह खो गए थे कि उन्हें सूरज के बहुत ऊपर चढ़ जाने पर ही यह पता चला कि वह दोनों प्रातः भ्रमण के उद्देश्य से निकले थे। नैना ने कहा, "आपको शायद पता नहीं है कि अब नौ से ऊपर बज रहे हैं—हम लोगों के खो जाने का अंदेशा पैदा हो गया होगा घर में।"

"अरे बाबा! यह तो आधा दिन ही सरक गया। मुझे तो बातें करने में किसी बात का होश ही नहीं रहा। और आप भी इस तरह उलझा लेती हैं कि फिर इधर-उधर हटने की गुंजाइश ही नहीं छोड़तीं।"

नैना हंसकर बोली, "भला जब कोई पूरी भूख में भोजन करने बैठा हो तो उसके सामने से भोजन की थाली खींची जा सकती है?"

"अच्छा तो यह प्रश्न पर प्रश्न जो आप सरकाती चली जाती हैं यह सब जानबूझकर करती हैं? चलिये आज मुझे आपकी इस चालाकी-भरी कुशलता का पता चल गया—आगे से मैं खबरदार रहूंगा।"

"ठीक है, खूब खबरदार रहिएगा, पर यह भी बतला दीजिए कि कहां-कहां खबरदार बने रहने का इरादा है? अभी तो बातें हो रही थीं कि मनुष्य को स्वयं अगले पल का कोई ज्ञान नहीं रहता कि वह क्या आचरण करने वाला है।"

"सब कहने की बातें हैं नैना देवी! भला स्त्री जाति से कोई खबरदार रह सकता है—खबरदारी भी तो एक दूसरी तरह की गफ़लत है.

किले की दीवार किधर से टूट सकती है इसके संबंध में कोई कुछ नहीं कह सकता ? खूब चौकस पहरेदार भी झांसे-पट्टी में आ जाते हैं फिर मेरी तो बिसात ही क्या है ?"

"इतने भोले और गाफिल नहीं हैं आप ! इतने से दिनों में ही मैं यह बात खूब अच्छी तरह जान गई हूं।" नैना ने कटाक्ष करते हुए कहा।

"अच्छा ! आप और भी क्या-क्या जान गई हैं—वह भी तो बतला दीजिए।"

"बड़ी भारी उत्सुकता है वह जानने की आपको ?" नैना ने शोख हंसी के साथ पूछा।

"जाहिर है कि हमारे संबंध में दूसरा क्या सोचता है यह जानने की उत्सुकता हम में से हर किसी को होती है। हम चाहे कहते कुछ भी रहें मगर वास्तविकता तो यही है कि स्वयं को दूसरों की नजरों से तौलते हैं।"

"सब ऐसा नहीं करते। आप यह अपनी बात कह रहे हैं शायद।" नैना ने जयन्त को छेड़ा।

"मैं अपनी ही बात नहीं कह रहा हूं—आपकी और बाकी सबकी भी कह रहा हूं। ऐसा कोई भी तो नहीं है जो—दूसरे क्या सोचते हैं हमारे बारे में—इस तथ्य की अवहेलना कर सकता हो। हमारे मन की चमड़ी इतनी पतली है कि उस पर जरा-सी बात का आघात प्रभाव छोड़ता है। हम दूसरों की जरा-सी बदली हुई नजरों से लहूलुहान हो उठते हैं। अगर हम वास्तव में दूसरों की जरा भी परवाह न करें तो इस दुनिया का बहुत कुछ गलत बदला जा सकता है, पर वैसा होता कहां है ? अभी आप समय जरा ज्यादा हो जाने की वजह से क्या नहीं कह रही थीं : 'हम लोगों के खो जाने का अंदेशा पैदा हो गया होगा घर में ? क्या अभिप्राय था यह कहने का ? यही तो कहना चाहती थीं कि पता नहीं दूसरे लोग हमारे बारे में क्या सोच रहे होंगे। फिर हुई न मेरी वही बात कि हम स्वयं को प्रायः दूसरों की नजरों से तौलते हैं।"

"आप उड़ते हुए पक्षी की छाया फंदे में डालने में माहिर हैं।"

"छाया को फंदे में डालने से क्या होगा अगर पंछी ही उड़ जाएगा।"

जयन्त ने उठते हुए कहा।

"रामायण मे उस किसी का वर्णन आया है न कि वह छाया से ही पंछी पकड़ लेती थी।" नैना अपनी हंसी दबाते हुए बोली।

"जी हां, उस किसी की बात क्या कह रही हैं सीधे-सीधे उसे राक्षसी क्यों नही कहती। तो मैं आपकी नजरों मे वही कुछ हूं।" जयन्त ने घास पर बैठी हुई नैना की कलाई पकड़कर उसे खड़ी करते हुए कहा।

"आपसे मैं किसी तरह नही जीत सकती। आप ठहरे चार्टर्ड हिसाबी-किताबी यानी सी० ए०। आपसे बातें करते हुए पहली बात यह होती है कि आदमी अपनी तरफ से पूरी तरह बेखबर हो जाता है। यह वाक् वशी-करण कहलाता है। कोई चाहे तो इसे अपने भीतर पैदा नही कर सकता। भगवान की दी हुई चीज है इसलिए कुछ कहा भी नही जा सकता।"

दोनों बातें करते हुए जिस समय घर पहुचे सब लोग नाश्ता करके मेज से उठ रहे थे। मीनाक्षी ने उन दोनों को आते देखा तो नैना की ओर मुखातिब होकर बोली, "भैया जी के चक्कर मे आज तुम्हारा नाश्ता तो गया। जो भी इनके साथ कहीं जाता है बस हवाई बातों से पेट भरकर ही लौटता है। बोलो क्या खिलाया इन्होंने तुम्हें?"

नैना मुस्कराकर बोली, "बहुत कुछ खिलाया जयन्त बाबू ने। आपका यह खयाल है भाभी जी कि आपके देवर सिर्फ बातें ही बनाना जानते हैं, मगर हमेशा ऐसा ही नही होता है। मेरे मामले में तो बात एकदम अलग है। मैंने आज मन भरकर बहुत कुछ खाया-पिया है।"

"बस-बस रहने दो। चलो दोनों सीधे से बैठकर नाश्ता करो। मैं बताती हू यह तुम्हे कहां लेकर गए होंगे। नहर के किनारे टहलते हुए किसी गार्डन में जा पहुंचे होंगे और वहां बैठकर तुम्हें हरे-भरे वृक्षों और पौधों को दिखा-दिखाकर कुदरत के रहस्य समझाते रहे होंगे।"

"आप तो बहुत ज्यादती कर रही हैं भाभी जी! यह तो आप जयन्त बाबू से ही जान सकती है कि वह मुझे कहां लेकर गए थे, पर इतना स्पष्ट है कि उन्होंने मुझे सिर्फ पेड़-पौधे और प्रकृति की सुषमा दिखाकर नही बहलाया। उनसे मैंने बहुत कुछ समझा है।"

"कुछ सीखा भी है?" नैना की ओर देखकर मीनाक्षी ने जयन्त से

कहा, "अब खड़े सिर में उंगली ही घुमाते रहोगे या कुर्सी पर बैठकर कुछ पेट में भी डालोगे? खुद तो भूखे मरने की आदत है ही—बेचारी लड़की को भी भूखा मार रहे हो। मुझे तो यही लगता है कि तुमने उसे परसों भी कुछ नहीं खिलाया-पिलाया होगा। बस सारे दिन इधर से उधर चक्कर काटते रहे होगे।"

जयन्त ने हंसकर कहा, "इससे अच्छी क्या बात हो सकती है कि मैं इस देश की विकट अन्न-समस्या का बहुत ही अचूक समाधान उपयोग में ला रहा हूं। मेरा खयाल तो यह है कि भाभी आप मेरे साथ रोज़ सुबह सैर के लिए चला करें। इससे लाभ यह होगा कि आपको सुबह नाश्ता करने की जरूरत नहीं होगी। अनाज वगैरह तो बचेगा ही साथ ही आपकी सेहत भी कुछ काबू में आ जाएगी।"

याज्ञनिक महोदय जो अब तक देवर-भाभी का सहज परिहास सुनकर आनन्दित हो रहे थे—बोल उठे, "कुछ कहिए मीनाक्षी जी, आपके देवर महोदय हैं गुणी आदमी। इन्हें वशीकरण मंत्र की सिद्धि अवश्य है। मैं भी जब इनसे बातें करता हूं तो मुझे यही लगता है जैसे मेरे सामने एक नई और विचित्र दुनिया का रहस्य खुलता चला जा रहा है।"

"तो फिर इन्हें अंग्रेज यहां कैसे छोड़ गए बाबूजी?" मीनाक्षी ने जयन्त पर कटाक्ष किया।

"अंग्रेज के पेट में यह पच नहीं सकते थे और यह कहीं भी किसी के लिए आसान नहीं है। किसी-किसी आदमी के पास अपना गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व होता है जो अलग से ही दीख पड़ता है।"

"अच्छा बाबू जी, यह क्या बृहस्पति के औतार हैं? आप इनकी तारीफ करके इन्हें और भी ज्यादा सिर पर चढ़ा रहे हैं। आप तो स्वयं इतने बड़े और विचारशील हैं कि यह आपके सामने कहां ठहर सकते हैं?" मीनाक्षी ने याज्ञनिक जी से कहा।

"उम्र बड़ी चीज नहीं होती है बेटा—अनुभव ही बड़ी चीज है। प्रकृति किसी-किसी आदमी को प्रबल संस्कार देकर दुनिया में भेजती है और

"आपकी बात मैं मान लेती हूं। ठीक है यह हमारे परिवार में एक तोप चीज़ पैदा हो गए हैं, मगर अब इनका क्या करें। क्या इन्हें सिर पर उठाकर नाचते घूमें?"

"प्लीज भाभी, मुझे तो मेरे हाल पर ही छोड़ दीजिए मगर नाचकर तो दिखा दीजिए एक बार। आपको कभी मैंने नाचते नहीं देखा—। आपको नृत्य की मुद्रा में देखने की मेरे मन में बड़ी जबरदस्त साध है। आज ही पूरा करके दिखा दें तो मेरा जन्म सफल हो जाए।"

"इसी से ये जब मैं इस घर में आई थी—आज मेरा नाच देखना चाहते हो—शर्म तो नहीं आती यह कहते हुए।" मीनाक्षी ने स्टूल के बराबर हाथ ऊपर उठाकर कहा।

"देखा भाभी का तर्क? जब कुछ भी बहाना नहीं चला तो मुझे मेरा कद दिखाने पर उतर आईं। आदमी जब किसी पर अपना बड़प्पन थोपना चाहता है तो उसे अपनी और उसकी आयु का फर्क बतलाने लगता है। खैर, हम तो इस फर्क का भी आदर करते हैं।" यह कहकर जयन्त खिल-खिलाकर हंसा और बोला, "अच्छा भाभी, आज दोपहर को हमें आप क्या खिलाने जा रही हैं?"

आठ

जब कई दिन बाद जम्मू जाने की बात तय होने लगी तो मीनाक्षी और ज्योति ने याज्ञनिक लोगों से कुछ दिन और ठहरने का विशेष अनुरोध किया। उसी शाम को नैना ने जयन्त से एकान्त देखकर कहा, "मैं आपसे एक बात पहले से ही कह देना चाहती हूं।…" और इतना कहकर वह चुप हो गई। उसकी आंखों में असीम उदासी भर गई।

जयन्त ने इधर-उधर देखकर पूछा, "ऐसी क्या बात है जिसको लेकर आज इतनी व्यथित दिखलाई पड़ रही हैं? और ऐसी तो कोई बात ही नहीं है जिसे आप निःसंकोच न कह सकें। कहिए, ऐसी क्या बात है जो आपके मन में कांटे की तरह गड़ी हुई है?"

जयन्त की वात सुनकर नैना कुछ देर तक चुप वनी रही और फिर
रे-धीरे कहने लगी, "पिताजी और मां से सब लोग रुकने का अभी
हुत आग्रह कर रहे हैं—वस आप अपनी तरफ से कोई इसरार न करें।
ाप जानते ही होंगे कि कुछ चीजें हर आदमी के लिए इतनी मूल्यवान
होती हैं कि वह उन्हें टूटने से वचाना चाहता है। मैं भी किसी मोह में पड़
गई हूं और कुछ वचा ले जाना चाहती हूं। आपने चले जाने को लेकर
कोई अनुरोध रुक जाने की दिशा में किया तो कई दिनों का कठिन संकल्प
भाप सरीखा उड़ जाएगा।"

जयन्त गम्भीर होने के वजाय हंस पड़ा और वोला, "तो यह चाल है
आपके न जाने की। यह तो वही मान न मान मैं तेरा मेहमान वाली उक्ति
चरितार्थ करने पर लगी हैं आप। सोचिए तो सही, मुझे क्या गरज़ पड़ी है
कि मैं आपको जाने से रोकूं ? कहिए तो आपके जाने की घड़ी मैं घर में ही
न रहूं।"

जयन्त की वात से नैना की उदासी एक क्षण में उड़ गई और वह हंस-
कर वोली, "वड़े दुष्ट हैं आप तो। आप तो किसी की काव्यात्मक
कोमलता की भी रक्षा नहीं कर सकते ?"

सच वात तो यह थी कि नैना के विषय में उसका अवचेतन वरावर
ही सोचता चला आ रहा था। उसने जिस समय नैना को पहली वार ट्रेन
में देखा था तभी से वह उसके भीतर गहरी पैठ गई थी। शकुन और नैना
दोनों ही उसके लिए एक पहेली के समान थीं। अव शकुन तो जयन्त से
इतनी दूर जा चुकी थी कि उसके सम्वन्ध में कुछ भी मन में लाना व्यर्थ था।
नैना इतनी थोड़ी-सी उम्र में इतने वड़े दुखान्त का शिकार हो चुकी थी
कि जयन्त लाख चाहने पर भी स्वयं को उससे तटस्थ नहीं कर पा रह
था। जव भी उसके मस्तिष्क में यह वात उभरती थी कि नैना दो-चार दि
में हमेशा के लिए दूर चली जाएगी और फिर उसे छू पाना भी असम्भव
जाएगा तो वह घवरा उठता था। यद्यपि नैना से उसने कोई अन्तरंग व
नहीं की थी और न ही नैना ने उसके जीवन के इतिहास में पैठने
कोशिश की थी, पर वह दोनों एक-दूसरे से क्षण-भर के लिए भी मुक्त
हो पा रहे थे।

जयन्त को यह सोचकर जबरदस्त हैरानी होती थी कि बरसों से सिर्फ शकुन के लिए पागल रहने वाला व्यक्ति—जिसने लम्बे अर्से तक शायद किसी लड़की को नजर-भर भी नहीं देखा था, चार दिन में किस कदर बदल गया था। उसे लग रहा था कि वह अनजाने में ही किसी छलना का शिकार हो गया था। उसे बहुत पहली पढ़ी हुई किसी कवि की पंक्तियां याद आती थी। शायद उस कवि ने ऐसी ही मन-स्थिति में ये पंक्तियां लिखी होंगी :

फिर कभी न मिलने की कहकर
आया मेरी कायरता थी।
इस पर भी छलना ने ढूंढे
फिर नये-नये संगी साथी।

जयन्त को अब नैना के सामने खड़े होकर लग रहा था कि जो सामने है उसी को अन्तिम मान लेना बहुत बचकानी बात है। इस क्षण यदि वह नैना के प्रति पागल है तो कौन कह सकता है कल वह किसी अन्य के लिए विकल और व्यथित नहीं हो उठेगा ?

नैना ने उसे गम्भीर होते देखकर कहा, "यह क्या ? अभी-अभी तो आप इतने हंसी-मजाक के मूड में थे और मुझे खिझा रहे थे और यकायक इतने संजीदा हो गए। लगता है सहसा कोई भूली हुई बात याद आ गई।"

जयन्त ने नैना को बहलाने की कोशिश की, "नहीं-नहीं, मूड-बूड की तो कोई बात नहीं है। मैं यही सोचने लगा था कि क्या तुम वास्तव में चली जाओगी। मैंने इस संबंध में तो कभी कुछ ध्यान ही नहीं दिया था। मैं तो तुम्हारे अलावा उस दिन से इधर-उधर कुछ देख ही नहीं पाया था। आज यह जाने की बात यद्यपि नई और अनोखी नहीं है पर पता नहीं क्यों, मन को न जाने कैसी अनहोनी-सी लग रही है।"

अब नैना के हंसने की बारी थी। वह मुस्कराकर बोली, "तो जनाब, इस समय ऊंट पहाड़ के नीचे से निकल रहा है?"

"कभी न कभी पहाड़ के नीचे से निकलना तो ऊंट की नियति है। पर यह पहाड़ ऊंट की पीठ पर कुछ ज्यादा ही भारी पड़ रहा है।"

"कोई बात नहीं है—अगर इसे पहाड़ समझोगे तो और भी

तकलीफ महसूस करोगे।" नैना ने उसे छेड़ा।

"अच्छा तो तुम्हारा कहना यह है कि मैं पत्थर को फूल समझूं?" जयन्त ने एक आंख छोटी करके पूछा।

"फूल और पत्थर का रिश्ता तो हमेशा से है और अटूट है। पहाड़ों को फोड़कर ही फूल खिलते हैं। आप तो खूब पहाड़ घूमे हैं। इतना तो देखा ही होगा कि चट्टानों के सिर पर फूल खिले रहते हैं और आकाश में सिर उठाए शाल और देवदारु खड़े रहते हैं। मैदान में वह हरियाली दूर-दूर तक नज़र नहीं आती जो पहाड़ों की कोख में जन्म लेती है। असल में पत्थरों में ही तो कोमलता ज्यादा सुरक्षित रहती है।"

"आप तो अच्छी-खासी कविता कर लेती हैं। लगता है कुछ लिखने-लिखने का भी रोग है आपको।"

"ऐसी बेकार की बातों में मैं नहीं पड़ती। लिखना तो दूर की बात है मुझे कविता जैसी बेतुकी चीज को पढ़ने में भी दिलचस्पी नहीं है।"

"यह क्या कह रही हो? कविता में तो हमेशा तुक प्रधान रही है। कविता का सारा लालित्य तो तुक के साथ जुड़ा हुआ है।"

नैना मुस्करा पड़ी और बोली, "सिर्फ ऊपरी मतलब मत पकड़ो। मेरी मंशा कविता की तुक—यानी अंत, संत, हंत, कंत, दंत आदि को लेकर नहीं है, मेरा असली मुद्दा यह है कि कल्पना के लोक में विचरण करते हुए असंभव बातों को कविता में असलियत का जामा पहनाया जाता है। जो चीज़ कभी बुद्धि के स्तर पर विश्वसनीय नहीं बन पाती, उसी चीज की कविता में खूब भरमार होती है।"

"कविता को गोली मारो, अब मैं तुमसे एक बहुत डाइरेक्ट बात पूछता हूं कि यदि मैं तुम लोगों के साथ जम्मू और जहां भी तुम जाने वाली हो वहीं तक चलूं तो तुमको कैसा लगेगा?"

जयन्त की यह बात सुनकर नैना एकदम चुप हो गई। उसने सोचा भी नहीं था कि जयन्त उसके सामने इतनी स्पष्टता से साथ चलने का प्रस्ताव रख देगा। जिस अभिशाप से वह ग्रस्त थी उसे जयन्त ने एक बार भी नहीं छुआ था। जिस बात से वह सबसे ज्यादा भयभीत थी—वही चीज़ उसके सामने आकर खड़ी हो गई। वह जयन्त से यही कहने आई थी कि

जब वह उसके घर से जाने लगे तो जयन्त उसके सामने आकर कोई ऐसा आग्रह न कर बैठे जिससे नैना का मन कच्चा पड जाय। जीवन में विषमता उत्पन्न करने वाले मोह से नैना पूरी तरह बचना चाहती थी। जयन्त उसके जीवन में किसी महत्त्वपूर्ण स्थल पर आकर खड़ा हो जाय इस तथ्य से वह पूरी तरह आंखें मूंद लेना चाहती थी। निम्नमध्यवर्गीय परिवारों में विधवा को लेकर जिस तरह का आचार-विचार रहता है उसे वह अच्छी तरह जानती-समझती थी। उसके माता-पिता अत्यन्त उदारमना थे, पर जिस समाज में वह रहते थे वहां की रीति-नीति तो अलग ही थी। समाज में रहकर उसी का तो निर्वाह करने की बाध्यता थी। ऐसी स्थिति में जयन्त का और आगे बढ़ना गंभीर और खतरनाक था।

नैना सोच में पड गई। जयन्त ने तो एक बार भी कोई ऐसी स्वतंत्रता लेने की कोशिश नहीं की जिससे पता चले कि वह उसके साथ कोई खिल-वाड करना चाहता है। भद्रता और शील की रक्षा करने में तो उसने स्वयं को उदाहरण बनाकर प्रस्तुत किया था। यह तो उसके मन का ही बवंडर था जो उसे अपने साथ उडाये लिए जा रहा था। नैना तय नही कर पाई कि वह अब क्या कहे—क्या करे!

जयन्त ने उसका गहन गम्भीर मुंह देखकर कहा, "लगता है मेरे साथ चलने की बात को लेकर काफी मुश्किल में पड़ गई हो। ठीक है तुम नहीं चाहतीं तो मैं नहीं जाऊंगा। मैंने अभी उस रोज भैया से बातें की थीं कि वह तुम लोगों के साथ भाभी और ज्योति को भेज दें—यह लोग भी चली जाएंगी तो कुछ देख-सुन आएंगी। मगर भैया ने बतलाया कि उनके एक मित्र कश्मीर घूमने आ रहे हैं। उनका परिवार कुछ दिन यहां ठहरेगा और फिर नैना, भाभी, भैया और बच्चे उनके साथ जम्मू और श्रीनगर जाएंगे। पहलगाम और गुलमर्ग के सरकारी बंगलों में आरक्षण की व्यवस्था भी हो गई है। इसलिए इन लोगों का जाना तो होगा ही नहीं। जहां तक मेरी बात है मैं तो एक-दो रोज में जहां से आया हूं वहीं लौट ही जाऊंगा। आखिर कोई अपने आप से कब तक भाग सकता है? कभी तो थकता ही है।"

नैना ने जयन्त का अंतिम वाक्य सुना तो वह सिहर उठी। उसकी कल्पना में एक बार भी तो यह बात नहीं आई थी कि जयन्त को भी स्वयं

से भागने की कोई विवशता हो सकती है। हालांकि यों ही अनजाने में नैना ने जयन्त से जो कुछ कहा था उसकी सचाई वह स्वयं भी नहीं जानती थी पर जयन्त के इस वाक्य से 'आखिर कोई अपने आप से कब तक भाग सकता है ? कभी तो थकता ही है'—नैना को अपना कहा हुआ सारा कुछ याद आ गया। नैना ने कहा था, 'आपका प्रयास निरन्तर यही है कि आप अपने आपसे भागते चले जाएं। और इतनी दूर तक भागें कि फिर किसी की नजर में न आएं। पर आप स्वयं को तरह देने की कोशिश में यह भूल रहे हैं कि स्वयं से कोई बहुत दूर नहीं जा सकता···स्वयं से बेगाना हो जाना इतना ही द्वंद्वातीत हुआ होता तो फिर मुश्किल ही क्या होती ? जिससे भाग कर आप यहां-वहां भटक रहे हैं वह आपके अंतर्मन के निविड़तम प्रकोष्ठ में पूर्ण सुरक्षित है।···'

नैना ने उस दिन के अपने कथन को आधार बनाकर जयन्त का अकारण थका हुआ चेहरा देखकर कहा, "मैं कुछ नहीं कहती—जो आपका मन और विवेक कहे वैसा ही करें। मेरी ओर से हां ना का कोई आग्रह नहीं है।"

"बस तो फिर बात खत्म।" कहकर जयन्त ने एक लम्बी सांस खींची। इसी समय ज्योति घर के भीतर से आती दिखाई पड़ी। जयन्त और नैना को घनिष्ठ वार्तालाप में लगा देखकर ज्योति घर के भीतर जाने को मुड़ ही रही थी कि जयन्त ने उसे पुकारकर कहा, "ज्योति, उधर कहां चली जा रही है—एक बात तो सुनना जरा।"

नैना ने देखा कि उसने अपने मन के भीतर के स्वीकार को दबाकर अनर्थ कर दिया। उसने अपनी ओर से साथ चलने का आग्रह दिखाया होता तो जयन्त उन लोगों के साथ अमरनाथ तक जरूर जा सकता था और उसके साथ जाने को लेकर उसके माता-पिता एक तरह से खूब प्रसन्न ही हुए होते, किन्तु उसने अपने भीतर छुपे हुए चोर से आतंकित होकर मन को अपराधी बना दिया।

जरा देर में ही ज्योति पास आकर पूछने लगी, "क्या आप दोनों घर में चाय नहीं पियेंगे ? चाय की मेज पर सब लोग बैठे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"अच्छा ! चलो चलते हैं।" कहकर जयन्त चल पड़ा। उसने नैना से फिर कुछ नहीं कहा। नैना और ज्योति उसके पीछे-पीछे बातें करते हुए चलने लगीं।

चाय पीते समय नैना और जयन्त लगभग चुप ही बने रहे। मानिक, उनकी पत्नी, ज्योति और मीनाक्षी बातों में व्यस्त हो गए। मानिक ने जयन्त को बतलाया, "जंन्त बाबू, कल हमारा आने का पक्का हो गया है। अभी थोड़ी देर पहले भैया जी का दफ्तर से टेलीफोन आया है कि जम्मू तक हमें जीप से छोड़ दिया जायगा।"

मीनाक्षी बोली, "हम सब लोग सोचते थे कि वैष्णोदेवी और उसके बाद अमरनाथ साथ ही चलेंगे। इस बहाने सब लोग संग-साथ में चले जाते तो तीर्थ-दर्शन हो जाते, मगर इनके (मीनाक्षी के पति) दोस्त [illegible] साहब दिल्ली से आ रहे हैं। बाल-बच्चे भी साथ आएँगे इसलिए हम लोगों का प्रोग्राम तो आखिरी वक्त पर कैंसिल हो गया।"

जयन्त ने भाभी की बात सुनने के बाद भी अपनी तरफ से कोई टिप्पणी नहीं की तो वह बोली, "जयन्त भैया, पहले तो आप [illegible], बड़ा अच्छा मौका है चले जाइए।"

जयन्त ने खाली-खाली निगाहों से मीनाक्षी का चेहरा देखा और फिर अनजाने ही उसकी आँखें नैना की ओर उठ गईं। नैना आँखें [illegible] किए बैठी न जाने क्या सोच रही थी! जयन्त ने [illegible] कोई उत्तर नहीं दिया तो मानिक बोले, "वाह! [illegible] होगी? हम तो जंन्त बाबू के साथ के लिए [illegible] कुछ दिन और रहने का अवसर मिल जाए तो क्या कहना!"

मानिक की पत्नी भी खुश होकर बोलीं, "[illegible] जयन्त के साथ तो हम सभी लोगों का बहुत मन लगता है। [illegible] अगर इनके साथ और रहने का मौका मिल जाए [illegible] हो सकेंगे।"

जयन्त को इस प्रस्ताव के प्रति [illegible] देखा तो किसी काम का बहाना करते हुए उठ गए और [illegible] कि रात का खाना एक दूसरी जगह पर है।

जयन्त सभी लोगों को चाय की मेज पर बैठे छोड़कर चुपके से उठा और अपने कमरे में चला गया। शाम होने लगी थी। वह अंधेरे में करीब आधा घंटे तक एकान्त में बैठा अपने अतीत में खोया रहा। वह बार-बार शकुन और नैना को अपनी आंखों के सामने उभरते देखता था और निरन्तर भ्रान्त होता चला जाता था।

काफी देर तक उधर कोई नहीं आया। कमरे में अंधकार देखकर किसी ने सोचा भी नहीं कि जयन्त अन्दर कमरे में अकेला ही बैठा है। अन्त में उसने घर से बाहर निकल जाने का फैसला किया। कपड़े पहनकर वह दबे पांव बंगले से बाहर निकल गया।

कोई सवा घंटे के बाद जब सब लोग बाहर खाना खाने के लिए जाने लगे तो जयन्त की खोज शुरू हुई। जयन्त किसी को कुछ बतलाकर तो गया नहीं था इसलिए उसके लौटने का भी कोई समय तय नहीं था। समय बढ़ता देखकर यही निश्चय किया गया कि नौकर से यह कहकर कि जयन्त जब आए तो उसे अमुक साहब के यहां भेज दिया जाय, घर के लोग जाने लगे।

नैना ने भी जाने के समय सिरदर्द की बात कही। मीनाक्षी ने उससे आग्रह किया कि घर से बाहर निकलने पर सिरदर्द आप से आप ठीक हो जाएगा। इसके अलावा घर में नौकर के अलावा कोई अन्य आदमी नहीं था इसलिए नैना के घर में अकेले ठहरने का कोई औचित्य नहीं था।

मन मारकर नैना भी सब लोगों के साथ घर से निकल गई। लेकिन नैना अन्त तक जयन्त के लौटने की आशा करती रही। उसे बार-बार यही लगता रहा कि जयन्त नैना से अलग-थलग बने रहने के लिए घर से बाहर चला गया है। उसने सोचा कि लौटकर वह जयन्त से बातें करेगी और उसे अपने साथ वैष्णोदेवी और अमरनाथ ले जाने के लिए तैयार करेगी। उसे निरन्तर यह अपराधबोध डंसता रहा कि उसने ही जयन्त को साथ जाने के लिए मना करके दुख पहुंचाया है। हो सकता है जयन्त उसके मुखर नकार से अपमानित महसूस कर रहा हो।

रास्ते-भर नैना की आंखें जयन्त को इधर-उधर तलाश करती रहीं। उसे एक क्षीण-सी आशा यह भी बनी रही कि हो सकता है जयन्त खाने के

वक्त पर मेजबान के यहाँ कहीं से घूमता-घामता पहुंच ही जाए।

जब सब लोग खाने बैठे तो दस बज रहे थे। मीनाक्षी ने अपने घर फोन करके जयन्त के बारे में मालूम किया तो हीरा ने बतलाया कि जयन्त साहब अभी तक नहीं लौटे हैं। अगर वह जल्दी ही आ गए तो वह उन्हें खाने के लिए भेज देगा।

पर जयन्त वहां पहुंचा ही नहीं। होते-होते रात के साढ़े ग्यारह बजे जब सब लोग घर लौटकर आए तो पता चला कि जयन्त अपने कमरे में जाकर सो गया है। उसने हीरा से कह दिया था कि वह बाहर खाना खाकर आया है और सोने जा रहा है।

और रोज तो जयन्त अन्य सभी लोगों के साथ बाहर लॉन में ही सोता था, मगर उस रात वह कमरा भीतर से बन्द करके कमरे में ही सो गया। मीनाक्षी ने एक बार सोचा भी कि वह जयन्त को जगाकर बाहर सोने के लिए कहे, किन्तु अधिक रात बीत जाने का खयाल करके अन्त में उसने अपना विचार बदल दिया और जयन्त को कमरे में ही सोने दिया।

नैना निरन्तर उद्विग्न होती चली गई। जयन्त का यह व्यवहार उसे भीतर तक दुखी कर गया। उसे बार-बार अपनी गलती का अहसास होने लगा। मगर उसने जयन्त को अपने साथ चलने से क्यों रोकने की कोशिश की थी, क्या जयन्त इस बात को पूरी तरह समझा नहीं था? जयन्त के प्रति उसका रुख यदि तटस्थ रहा होता तो क्या उसे जयन्त को साथ ले जाने में किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती थी? अन्तरंगता में ही तो निकटता डराती है क्योंकि हम स्वयं को वैसी स्थिति में बचाकर नहीं रख पाते, किसी भी सीमा तक आगे बढ़ने पर कोई रोक नहीं रह सकती।

उस रात नैना बिस्तर पर पड़ी करवट बदलती रही और जयन्त भी एक क्षण के लिए नहीं सो पाया। नैना से बिछुड़ने की घड़ी जितनी ही नजदीक आती जा रही थी, उसकी छटपटाहट उसी अनुपात में बढ़ती चली जा रही थी।

नौ

आखिर कोई दिन तो अन्तिम होता ही है—वह दिन भी आ ही गया। याज्ञनिक लोगों की जाने की तैयारी सुबह से ही बड़ी व्यस्तता से आरम्भ हो गई। जयन्त अपने कमरे में बैठा उस हलचल को महसूस करता रहा। उसने कई बार सोचा कि वह उस समय तक के लिए घर से बाहर चला जाय जब तक कि नैना वहां से विदा होकर चली न जाय।

जयन्त एक उपन्यास लेकर सोफे पर पांव फैलाकर लेट गया लेकिन कई पृष्ठ पढ़ जाने के बाद भी उसकी समझ में उपन्यास का कोई प्रसंग नहीं आया—बल्कि उसे लगा कि उसकी चेतना बराबर उधर ही लगी हुई है जिधर बाहर जाने वाले लोग घर से निकलने की तैयारी कर रहे हैं। कोई शब्द किसी सन्दूक के खोलने या बन्द करने की आवाज या किसी के बोलने का स्वर रह-रहकर उसे अपनी ओर खींच रहा था। कई बार तो जयन्त को ऐसा लगा जैसे कोई चौखट पर आकर खड़ा हो गया है। पर दरवाजा तो भीतर से बन्द था, किसी के भी अन्दर आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। उसने स्वयं को समझाने की कोशिश की—थोड़ी ही देर की तो बात है, सब कुछ ही देर में चले जायेंगे तो फिर सारा कोलाहल ही शान्त हो जाएगा।

जयन्त ने अपने आप से तंग आकर अपना सिर इधर-उधर झटका और स्वयं से कहने लगा, 'तुम व्यर्थ ही इतने चंचल क्यों हो रहे हो? तुम्हारा उन लोगों से रिश्ता ही क्या है? कहां के लोग चन्द दिन साथ आकर रह गए, क्या उनके लिए इतना आकुल होना ठीक है?'

पर क्या ठीक है और क्या गलत है इसका निर्णय कौन कर सकता है? जब आप अपने ऊपर से काबू खोने लगें तो उचित-अनुचित का विवेक करने वाला मनुष्य के भीतर बचता ही कौन है?

नाश्ते के वक्त हीरा ने आकर द्वार खटखटाया तो जयन्त ने उसकी पुकार का कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठा रहा। हीरा ने समझा कि जयन्त सो रहा है। हीरा ने सब लोगों के सामने जाकर कहा, "छोटे भैया तो सो रहे हैं।"

मीनाक्षी जयन्त का यह अकस्मात परिवर्तन नहीं समझ पाई। पर उसने शब्दों द्वारा कोई असन्तोष प्रकट नहीं किया, बल्कि कुछ सोच कर चुप हो गई। नैना ने तो इस बात की तरफ जान-बूझकर ध्यान नहीं दिया। नैना की माँ ने कहा, "लगता है जयन्त बाबू की तबियत खराब हो गई है। वह इस तरह कमरा बन्द करके बैठने वालों में नहीं हैं। क्या बात है न जाने, रात भी उन्होंने खाना नहीं खाया।"

ज्योति ने सशंकित नैना का चेहरा गहराई से देखा। उसे लगा कि इस सबके पीछे हो न हो जयन्त और नैना के बीच कोई ऐसी बात जरूर हुई है कि जयन्त अब नैना से बच रहा है। उसने पिछली शाम भी उन दोनों को एकान्त में बतियाते देखा था। शकुन और जयन्त के बीच जो कुछ बरसों से चला आ रहा था उसे भी ज्योति बखूबी जानती थी और यह भी उससे छिपा नहीं था कि शकुन के विवाह के बाद जयन्त बुरी तरह उखड़ गया था। नैना ने किसी की ओर आँखें उठाकर नहीं देखा—वह कुर्सी से उठकर बाहर चली गई।

जब लोग दोपहर का खाना खाने बैठे तो मीनाक्षी ने स्वयं जाकर जयन्त का द्वार खटखटाया। वह उनकी बुलाहट की अवहेलना नहीं कर सका। मीनाक्षी ने देखा सारे तकियों और गद्दियों का ढेर सोफे पर इकट्ठा था और एक पुस्तक सोफे पर खुली पड़ी थी।

जयन्त को इस हालत में देखकर मीनाक्षी ने पूछा, 'भैया जी, क्या बात है—आज उठने का इरादा नहीं है? सुबह भी नाश्ता नहीं किया। नहाना-धोना, खाना-पीना सब क्या खत्म कर दिया है आपने? किस बात पर आसन पाटी लिए कोपभवन में पड़े हुए हो? कुछ हमें भी तो मालूम होना चाहिए। उधर वह लोग खाने को बैठे हैं। जिन्हें इस घर में मेहमान बनाकर लाये थे, क्या उनके साथ बैठकर खाना भी नहीं खाओगे? तुम तो कह रहे थे कि वैष्णोदेवी और अमरनाथ तक इन लोगों के साथ जाओगे और अब यह हालत है कि दरवाजे से भी बाहर नहीं आओगे।"

जयन्त के चेहरे पर एक बहुत ही उदास और मरी हुई मुस्कराहट आई और वह बोला, "आपने तो पूरा भाषण ही दे डाला भाभी! अच्छा! आप लोग चलकर खाना खाइए, मैं बदन पर दो लोटे पानी डालकर आ रहा हूँ।

मेरी वजह से आप लोग अपना खाना न टालिए।"

लेकिन मीनाक्षी के जाने के बाद जयन्त ने कमरे का दरवाजा फिर बन्द कर लिया और उसे लगा वह स्वयं को बिल्कुल भी नहीं जानता है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि मनुष्य दूसरों की मीमांसा करता है---उन्हें लेकर न जाने कितनी टीका-टिप्पणी करता है, मगर स्वयं अपने सम्बन्ध में खाक भी नहीं जानता।

जयन्त को लगा कि दरवाजे पर कोई है और भीतर की आहट लेने की कोशिश कर रहा है। वह दम साधकर बैठ गया और अपने भीतर की प्रवंचना से लड़ने लगा। शकुन के चले जाने के बाद उसे लगा था कि उसने अपने ऊपर पूर्ण विजय पा ली है और वह अपने अतिरिक्त किसी अन्य से परिचालित नहीं होता है। उसकी सारी विवशताएं और कमजोरियां खत्म हो चुकी हैं।

लेकिन यह भाव सिर्फ उसके भीतर ही घटित हुआ था। उसका दम्भ एकदम छिछला था। अपराजेय होने की कामना करना एक विडम्बना के अलावा और है ही क्या? अपने भीतर वाले इन्सान का विश्लेषण कर लेने से क्या वास्तव में आदमी कुछ दूसरा हो जाता है? पता नहीं किस मनः-स्थिति में मनुष्य को अपना सर्वाधिक प्रिय और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी मामूली और लघु मालूम पड़ने लगता है। यह लगभग वैसी ही बात है जैसे कभी-कभी क्षणिक अरुचि से, भोजन विस्वाद और तुच्छ लगने लगता है और आदमी समझता है कि उसने भोजन के प्रति अरुचि दिखाकर सब दिन के लिए भूख पर विजय पा ली है। पर दो-चार दिन में ही भूख पुनः उस पर हावी हो जाती है और भोजन जीवन-रक्षा के लिए अपरिहार्य हो उठता है। ठीक यही स्थिति जयन्त की इस समय हो रही थी। उसे नैना अपने जीवन के लिए अपरिहार्य लगने लगी थी।

पेड़ की छाया को चिर दिन का सम्बल मानकर कोई उसके नीचे आश्रय नहीं ले पाता, पर धूप और लू से झुलसा हुआ राहगीर क्या छाया की अवहेलना कर सकता है? जयन्त ने स्वयं से प्रश्न किया, 'तू किससे तन रहा है? तेरे अभिमान को तो किसी ने भी आहत नहीं किया है पगले!' अनजाने में जयन्त उठा और उसने दरवाजे की सांकल खोल दी। वह

लौटकर फिर सोफे पर बैठ गया और भीतर से किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। पता नहीं किस अधिकार से वह नैना पर अपना दावा समझने लगा। वह उसकी आवाज सुनने को तड़प उठा।

तभी धीरे से किसी ने दरवाजा खोल दिया और उसके बिल्कुल नजदीक आकर कहा, "भैया जी, यह कैसी बात कर रहे हैं आप? सब लोग खाने की मेज पर आपके इन्तजार में बैठे हैं—कोई भी खाने को हाथ नहीं लगा रहा है। बड़े भैया का फोन आया है कि वह आधे घंटे बाद जीप भेज देंगे और फिर नैना वगैरह सब चले जायेंगे। आपको खाना नहीं खाना है तो, खायें मगर साथ तो आकर बैठ ही सकते हैं।"

जयन्त ने अपनी आंखें ऊपर उठाकर ज्योति का गम्भीर चेहरा देखा। ज्योति उससे तीन वर्ष छोटी थी पर आज वह एकाएक उससे वर्षों आगे निकल गई थी। वह उसको एक नादान बच्चे की तरह करणीय कर्म की दिशा सुझा रही थी।

जयन्त ने ज्योति से कुछ भी नहीं कहा। वह एक आज्ञाकारी बालक की तरह चुपचाप उठकर उसके साथ चल दिया। वह खाने के कमरे में पहुंचा तो उसने देखा याज्ञिक महोदय की बगल वाली कुर्सी खाली पड़ी है और सामने, मेज के उस तरफ नैना बैठी जयन्त की भतीजी से बातें कर रही है। मीनाक्षी याज्ञिक जी की पत्नी से कुछ पूछ रही थी। वहां कोई भी व्यक्ति सहज और साधारण व्यवहार से हटकर असामान्य नहीं लग रहा था। जयन्त—याज्ञिक जी की बगल में जाकर बैठ गया तो उन्होंने चेहरे पर सहज मुस्कान लाकर पूछा, "रात भी खाना नहीं खाया—अब भी बहुत उदास और थके-थके लग रहे हो। क्या तबियत खराब है? आप ज्यादा घूमे-फिरे हैं—हो सकता है इसी से कुछ अस्वस्थ हो गए हो। लगता है आज नहाया-धोया भी नहीं है। आज किसी डाक्टर से मिलकर कोई दवा ले लीजिए—गर्मी का प्रकोप बढ़ रहा है शायद।"

जयन्त ने जीवन्त होने की कोशिश करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, वैसी कोई बात नहीं है—कभी-कभी वैसा हो जाता है कुछ वक्त के लिए। मैं अब बिल्कुल ठीक हूं।" यह कहने के साथ ही उसने छिपी दृष्टि से नैना की ओर देखा, पर नैना ने अपनी आंखें उसकी ओर नहीं उठाई। वह जयन्त के

मेरी वजह से आप लोग अपना खाना न टालिए।"

लेकिन मीनाक्षी के जाने के बाद जयन्त ने कमरे का दरवाजा फिर बन्द कर लिया और उसे लगा वह स्वयं को बिल्कुल भी नहीं जानता है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि मनुष्य दूसरों की मीमांसा करता है—उन्हें लेकर न जाने कितनी टीका-टिप्पणी करता है, मगर स्वयं अपने सम्बन्ध में खाक भी नहीं जानता।

जयन्त को लगा कि दरवाजे पर कोई है और भीतर की आहट लेने की कोशिश कर रहा है। वह दम साधकर बैठ गया और अपने भीतर की प्रवंचना से लड़ने लगा। शकुन के चले जाने के बाद उसे लगा था कि उसने अपने ऊपर पूर्ण विजय पा ली है और वह अपने अतिरिक्त किसी अन्य से परिचालित नहीं होता है। उसकी सारी विवशताएं और कमजोरियां खत्म हो चुकी हैं।

लेकिन यह भाव सिर्फ उसके भीतर ही घटित हुआ था। उसका दम्भ एकदम छिछला था। अपराजेय होने की कामना करना एक विडम्बना के अलावा और है ही क्या? अपने भीतर वाले इन्सान का विश्लेषण कर लेने से क्या वास्तव में आदमी कुछ दूसरा हो जाता है? पता नहीं किस मनःस्थिति में मनुष्य को अपना सर्वाधिक प्रिय और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी मामूली और लघु मालूम पड़ने लगता है। यह लगभग वैसी ही बात है जैसे कभी-कभी क्षणिक अरुचि से, भोजन विस्वाद और तुच्छ लगने लगता है और आदमी समझता है कि उसने भोजन के प्रति अरुचि दिखाकर सब दिन के लिटा भूख पर विजय पा ली है। पर दो-चार दिन में ही भूख पुनः उस पर हावी हो जाती है और भोजन जीवन-रक्षा के लिए अपरिहार्य हो उठता है। ठीक यही स्थिति जयन्त की इस समय हो रही थी। उसे नैना अपने जीवन के लिए अपरिहार्य लगने लगी थी।

पेड़ की छाया को चिर दिन का सम्बल मानकर कोई उसके नीचे आश्रय नहीं ले पाता, पर धूप और लू से झुलसा हुआ राहगीर क्या छाया की अवहेलना कर सकता है? जयन्त ने स्वयं से प्रश्न किया, 'तू किससे तन रहा है? तेरे अभिमान को तो किसी ने भी आहत नहीं किया है पगले!' अनजाने में जयन्त उठा और उसने दरवाजे की सांकल खोल दी। वह

लौटकर फिर सोफे पर बैठ गया और भीतर से किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। पता नहीं किस अधिकार से वह नैना पर अपना दावा समझने लगा। वह उसकी आवाज सुनने को तड़प उठा।

तभी धीरे से किसी ने दरवाजा खोल दिया और उसके बिल्कुल नज़दीक आकर कहा, "भैया जी, यह कैसी बात कर रहे हैं आप ? सब लोग खाने की मेज पर आपके इन्तजार में बैठे हैं—कोई भी खाने को हाथ नहीं लगा रहा है। बड़े भैया का फोन आया है कि वह आधे घंटे बाद जीप भेज देंगे और फिर नैना वगैरह सब चले जायेंगे। आपको खाना नहीं खाना है तो, खायें मगर साथ तो आकर बैठ ही सकते हैं।"

जयन्त ने अपनी आंखें ऊपर उठाकर ज्योति का गम्भीर चेहरा देखा। ज्योति उससे तीन वर्ष छोटी थी पर आज वह एकाएक उससे वर्षों आगे निकल गई थी। वह उसको एक नादान बच्चे की तरह करणीय कर्म की दिशा सुझा रही थी।

जयन्त ने ज्योति से कुछ भी नहीं कहा। वह एक आज्ञाकारी बालक की तरह चुपचाप उठकर उसके साथ चल दिया। वह खाने के कमरे में पहुंचा तो उसने देखा याज्ञनिक महोदय की बगल वाली कुर्सी खाली पड़ी है और सामने, मेज के उस तरफ नैना बैठी जयन्त की भतीजी से बातें कर रही है। मीनाक्षी याज्ञनिक जी की पत्नी से कुछ पूछ रही थी। वहां कोई भी व्यक्ति सहज और साधारण व्यवहार से हटकर असामान्य नहीं लग रहा था। जयन्त—याज्ञनिक जी की बगल में जाकर बैठ गया तो उन्होंने चेहरे पर सहज मुस्कान लाकर पूछा, "रात भी खाना नहीं खाया—अब भी बहुत उदास और थके-थके लग रहे हो। क्या तबियत खराब है ? आप ज्यादा घूमे-फिरे हैं—हो सकता है इसी से कुछ अस्वस्थ हो गए हों। लगता है आज नहाया-धोया भी नहीं है। आज किसी डाक्टर से मिलकर कोई दवा ले लीजिए—गर्मी का प्रकोप बढ़ रहा है शायद।"

जयन्त ने जीवन्त होने की कोशिश करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, वैसी कोई बात नहीं है—कभी-कभी वैसा हो जाता है कुछ वक्त के लिए। मैं अब बिल्कुल ठीक हूं।" यह कहने के साथ ही उसने छिपी दृष्टि से नैना की ओर देखा, पर नैना ने अपनी आखें उसकी ओर नहीं उठाईं, वह जयन्त की

भतीजी बेबी के साथ पूर्ववत् गप्पें लड़ाती रही।

जयन्त के मुंह से एक दीर्घ निःश्वास निकल गई। जयन्त ने अपने दाएं-बाएं देखा पर सब खाने में लग गए थे। इसी बीच मीनाक्षी अपनी कुर्सी छोड़कर उठी और हीरा से कुछ कहने चली गई।

जयन्त ने खाने के प्रति महज़ इसलिए अपनी रुचि जगाने की कोशिश की कि शायद नैना उसकी ओर अपनी आंखें उठाये। नैना ने उड़ती-सी दृष्टि से जयन्त की ओर देखा और अपना चेहरा थोड़ा-सा घुमाकर बैठ गई जिससे कि उसे जयन्त को सीधी आंखों से न देखना पड़े। जयन्त यह भूल गया कि वह खाने की मेज़ पर कई जनों के बीच में बैठा हुआ है। वह प्रगल्भ होकर नैना की ओर देखता रहा। इस दृष्टि का अनुसरण सिर्फ ज्योति ने किया और वह भी इस तरह कि जयन्त कुछ न जान पाए।

जयन्त की इस ज्वलनशील दृष्टि को नैना अनदेखा नहीं कर सकी। उसने सीधी आंखों से जयन्त का चेहरा देखा। नैना की स्थिर काली पुत-लियों को घेरने वाली श्वेत आभा ने न जाने क्या सम्मोहन जगाया कि जयन्त एक पल के लिए उस जादूलोक में खो गया। उसे लगा मानो वह दूर ऊपर बहुत दूर आकाश में बादलों के समान तिरता चला जा रहा है। एक ही निमिष बीता होगा कि नैना की आंखें जयन्त के चेहरे से हट गईं किन्तु न जाने कितना अकथ्य, कितनी अनकही वेदना, कैसा अचल विश्वास पल-भर में जयन्त के समस्त अस्तित्व में समा गया।

खाना कब आरम्भ हुआ और कब समाप्त हो गया इसका जयन्त को कुछ पता ही नहीं चला। जब खाना खाने के बाद सब लोग उठकर हाथ-मुंह धोने चले गए तो उसकी भतीजी बेबी ने उसके पास आकर पूछा, "चाचा, क्या आप हम लोगों को साथ लेकर जम्मू नहीं चल रहे हैं? नैना आंटी के साथ जम्मू तक चलिए न। वहां से जीप में हम लोग आपके संग लौट आएंगे।"

जयन्त ने बेबी का चेहरा ध्यान से देखा और दबे स्वर में पूछ बैठा, "तुमसे यह किसने कहा है बेबी?"

"क्या चाचा?"

"यही कि तुम जम्मू तक चलो।"

वेबी एक क्षण चुप रहने के बाद बोली, "किसी ने भी नहीं कहा—मैं ही कह रही हूं। कल संडे है न चाचा! छुट्टी के दिन हम लोग जम्मू तक चले जाते तो खूब मजा आता।"

'वेबी झूठ क्यों बोलेगी' जयन्त ने अपने मन में कहा और यह विश्वास हो जाने के बाद कि यह आग्रह नैना की ओर से नहीं आया है—जयन्त का मन एकदम से बुझ गया। वह जैसे-तैसे दो-चार कौर मुंह में डालकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और फिर अपने कमरे में जाकर लेट गया।

जयन्त ने कमरे का द्वार बंद नहीं किया। उसने दीवार की ओर करवट ले ली और न जाने क्या-क्या सोचता चला गया।

तभी उसने महसूस किया कि कोई कमरे में आया है। मगर उसे किसी ने आवाज नहीं दी तो जयन्त ने सोच लिया कि यह उसका भ्रम ही है।

थोड़ी देर बाद उसने किसी के लम्बा सांस लेने की क्षीण ध्वनि सुनी और एकदम उठकर बैठ गया। उसने देखा नैना उसके बिस्तर के पास चुपचाप खड़ी थी। जयन्त हड़बड़ा उठा और बिस्तर से उठते हुए बोला, "अरे! आप कब आईं?"

नैना के चेहरे पर एक उदास मुस्कान उभरी और वह बोली, "आप तो अब मुझे देखना ही नहीं चाहते इसलिए बहुत डरते-डरते आई हूं। बस एक बात पूछने से स्वयं को नहीं रोक पा रही थी सो चली आई। पहले आप बैठ जाइए।"

जयन्त ने कुछ नहीं कहा। वह नैना के बोलने की प्रतीक्षा करता रहा। नैना ने कहना शुरू किया, "मुझे मालूम है कि आप बहुत नाराज हैं। इसका कारण मैं ही हूं। पर क्या आप अपने भीतर से यह स्वीकार करते हैं कि मैं उतनी बड़ी अपराधिनी हूं जितना बड़ा दण्ड आप कल से मुझे देते चले आ रहे हैं? क्या आप नहीं समझते कि मैं भीतर से कभी यह सोच भी नहीं सकती कि आप अमरनाथ इन लोगों के साथ न चलें? पर आप इतना तो समझते ही होंगे, आगे जाकर आपसे दूर हो जाने की कल्पना भी मेरे लिए दुस्सह हो जाएगी। मैं इस आत्मपीड़ा को और ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहती जयन्त बाबू! इस पीड़ा को बढ़ाते चले जाने का क्या कोई अर्थ है जिसका कोई दूसरा स्वरूप हो ही नहीं सकता?"

जयन्त भर्राये कंठ से बोला, "मैंने तो तुम्हारे आदेश का कोई विरोध नहीं किया। तुमने जिस समय मुझसे हट जाने का निर्णय किया मैं तो उसी क्षण से स्वयं को एकदम हटा ले गया हूं।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं चाहती थी। आप मुझसे स्वयं को हटा नहीं रहे हैं बल्कि आत्मबहिष्कार कर रहे हैं। यह ऐसी भयंकर आत्मपीड़ा है जो किसी की भी आंखों से बची नहीं रह सकती। इस घर में कोई कुछ भी कह नहीं रहा है, पर इस असहजता को क्या सभी भीतर से अनुभव नहीं कर रहे हैं? भाभी, ज्योति, पिताजी, मां और यहां तक कि बच्चे भी घर के वातावरण में एक मारक मनहूसियत उभरती देख रहे हैं। आप कल शाम तक कितने चंचल थे—कितनी ढेर सारी बातें करते थे—हंसते-हंसाते थे और फिर एकाएक बुझ गए। काश! आप सहज होकर हम लोगों को विदा दे सकते। जो बिछोह अवश्यम्भावी है उसे भीतर के हाहाकार से तो बरी नहीं किया जा सकता, पर उसे आंखों में लाने से बचाया जा सके तो जगहंसाई को बरी किया जा सकता है।"

"जिस दर्द के उद्‌गम का कोई इतिहास ही पकड़ाई में न आता हो नैना, उसे जितना ही संभालने का प्रयत्न किया जाता है वह बिफरे हुए बच्चे जैसा और भी ज्यादा हाथ-पांव पटकने लगता है। तुम समझती हो कि तुम्हारे यह कह देने से कि और आगे हमारे साथ न चलो, मुझे कोई अपमान या अभिमान महसूस हुआ है। नहीं, यह बात बिलकुल भी नहीं है। मैंने तुम्हारे दृष्टिकोण को ज़रा भी नजरन्दाज नहीं किया, पर तुम्हारे उस उचित फैसले ने भी मुझे पूरी तरह उखाड़ दिया है।" जयन्त ने धीरे-धीरे बोलकर किसी तरह मन में उफनते उद्‌गारों को व्यक्त किया।

"यदि आप हम लोगों के जाते समय ऐसे ही बेकाबू और अनमने बने रहे तो मेरी मुक्ति कभी सम्भव नहीं होगी। मैं आत्मदान के अतिरिक्त आपको कुछ और दे सकूं वह मेरे पास नहीं है।"

"जानता हूं कि मेरे कहने से ठहरोगी नहीं—शायद उस आग्रह का तुम्हारे जीवन में कोई अवसर नहीं है। यदि वैसा हो सकता तो मैं कहता सब रोज के लिए ठहर जाओ नैना! नदी को कहीं तो विश्राम चाहिए ही। वही नदी की मुक्ति है—वही समुद्र का प्राप्य है।"

जयन्त के अन्तरतम से आने वाली इस आकांक्षा को सुनकर नैना सिहर उठी। वह जयन्त के बिस्तर पर उसके निकट ही बैठ गई और कई क्षणों तक जयन्त का चेहरा निरखती रही। फिर उसकी आंखें नीचे झुक गई। उस क्षण वह अपने ऊपर से पूरा नियंत्रण खोकर सिसक उठी।

जयन्त ने अपनी उदासी को बलपूर्वक ठेल दिया और वह उठकर खड़ा हो गया। उसने धीरे से नैना के कंधे पर अपनी हथेली टिका दी और अपने भीतर उमड़ते आर्तनाद को दबाकर बोला, "जो अवरुद्ध है उसे निकल जाने दो, शायद सम हो जाने की यही शर्त है।"

नैना कुछ नहीं बोल पाई। उसने अपनी आंसुओं से धुंधली दृष्टि जयन्त के चेहरे की ओर उठाई और फिर नीचे झुका ली।

जयन्त ने कुछ नहीं कहा। वह नैना के हिलते हुए कंधों को थपथपाता रहा। वह जानता था कि वेदना के प्रबल वेग में आंसुओं का जो असीम पारावार उमडता है उसमें सान्त्वना कहीं से अपने आप आ जाती है। अश्रु के इस मूक व्यापार में वाणी एक व्यवधान ही है। कई मिनट तक नैना और जयन्त की यही स्थिति बनी रही।

सहसा अहाते में जीप के आने की घरघराहट उभरी तो नैना अपने आंचल को आंखों में लगाकर उठ खड़ी हुई। वह जाने लगी तो उसने मुड़कर एक बार जयन्त को देखा।

जयन्त ने उसके पीछे चलते हुए पूछा—"क्या यही अन्तिम विदा है?"

नैना द्वार के पास जाकर ठहर गई और उसकी ओर देखकर बोली, "नहीं! शायद विदा कभी अन्तिम नहीं होती। जीवन के महाचक्र में कुछ भी अंतिम नहीं होता। कभी हम मुक्त होंगे तो मिलेंगे और वही हम दोनों का महामिलन होगा।"

जयन्त ने फिर कुछ भी नहीं कहा। वह वहीं ठहर गया। पर उसी क्षण याज्ञनिक महोदय तेजी से उधर ही आते दीख पड़े। उन्होंने जयन्त के पास आकर उसके हाथों को अपनी हथेलियों के बीच दबाकर कहा, "मुझे दुख है कि एकाएक आपकी तबियत खराब हो गई और आप साथ न चल सके। खैर, अब कभी अहमदाबाद जरूर आइएगा। मैंने अपना

छोड़ दिया है।"

जयन्त भी उनके साथ बाहर बरांडे में निकल आया। उसने देखा याज्ञनिक लोगों का सामान जीप में रखा जा चुका था और मीनाक्षी नैना की मां से गले मिल रही थी। नैना और ज्योति दोनों एक-दूसरे से कोई इसरार कर रही थीं। उसने जीप के नज़दीक पहुंचकर अपनी भाभी को कहते सुना, "भैनजी, लौटते में इधर होकर ही जाइएगा। आप दो-चार दिन ही यहां ठहरीं, पर जनम जिन्दगी का संग लग रहा है इस छन।"

ज्योति भी नैना से कुछ ऐसी ही बातें कह रही थी। ड्राइवर ने जीप का इंजिन चालू किया तो याज्ञनिक बोले, "बैठो भई सब लोग—अब चलें।"

याज्ञनिक ड्राइवर की बगल में बैठ गए। नैना, उसका छोटा भाई और उसकी मां पीछे की सीट पर जाकर बैठ गए।

हार्न बजाकर जब जीप स्टार्ट हो गई तो जयन्त को लगा कि उसकी सारी देह में ठण्ड की लहर दौड़ गई है। उसने ज्योति और अपनी भाभी मीनाक्षी की आंखों में आंसू उमड़ते देखे। जीप अहाते से बाहर निकल कर सड़क पर पहुंच गई तो याज्ञनिक महोदय ने जीप से बाहर मुंह निकाल और अपना हाथ हिला दिया।

मीनाक्षी और ज्योति के घर में लौटने से पहले ही जयन्त बराण्डे पार करके अपने कमरे में पहुंच गया और हारे हुए जुआरी जैसा धम्म बिस्तर पर गिर पड़ा।

से० रा० यात्री : जन्म 1933 अगस्त मुजफ्फर नगर। एन० आर० ई० सी० कालिज पुर्जा से हिंदी साहित्य तथा राजनीति में एम० ए०। हिंदी की सभी शीर्षस्थ पत्रिकाओं मे गत पचीस वर्षों से कहानियों तथा उपन्यासों का प्रकाशन होता रहा है। निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का व्यापक चित्रण करने में सिद्धस्थ कथाकार। अनेक कहानियों का भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी आदि में अनुवाद हुआ है।
संप्रति : गाजियाबाद के एक विद्यालय मे हिंदी प्रवक्ता।

प्रकाशित कृतियां

कथा-संग्रह—दूसरे चेहरे, अलग-अलग अस्वीकार, काल विदूषक, धरातल, सिलसिला (उ० प्र० शासन से दोनों पुस्तकें पुरस्कृत) केवल पिता, अकर्मक क्रिया, वापसी, संबंधों के पीछे, टापू पर अकेले।
उपन्यास : दराजों मे बन्द दस्तावेज, लौटते हुए, अनजान राहों का सफर, चांदनी के आर-पार, बीच की दरार, प्यासी नदी, कई अंधेरों के पार, टूटते दायरे, चादर के बाहर, भटका मेघ, आकाश चारी,
व्यंग्य : किस्सा एक खरगोश का
शीघ्र प्रकाश्य : टूटती लहरें, दंश, देहान्तर (उपन्य
संपादन : विस्थापित (कथा-संग्रह)